राम का वनवास – कारण कैकेयी ? नहीं

वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विमर्श



प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय

राम का वनवास – कारण कैकेयी? नहीं

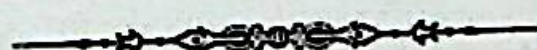
वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विमर्श



प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय

पूर्व विभागाध्यक्ष, कला इतिहास एवं पर्यटन प्रबन्ध

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



अतिथि सम्पादक, 'स्थापत्यम्'

जर्नल ऑफ दि इण्डियन साइन्स ऑफ आर्किटेक्चर एण्ड एलाएड साइन्सेज



वास्तु सदन

(रिसर्च सेण्टर फॉर वास्तुशास्त्र एण्ड एलाइड साइन्सेज)

दिल्ली

राम का वनवास – कारण कैकेयी? नहीं

वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विमर्श



प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय

पूर्व विभागाध्यक्ष, कला इतिहास एवं पर्यटन प्रबन्ध

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



अतिथि सम्पादक, 'स्थापत्यम्'

जर्नल ऑफ दि इण्डियन साइन्स ऑफ आर्किटेक्चर एण्ड एलाएड साइन्सेज



वास्तु सदन

(रिसर्च सेण्टर फॉर वास्तुशास्त्र एण्ड एलाइड साइन्सेज)

दिल्ली

प्रथम प्रकाशन : 2017

राम का वनवास — कारण कैकेयी? नहीं

मूल्य : ₹425 मात्र

फोन नं.: +91-89014 02928, +91-95607 39851, +91-94689 34705
ईमेल: sanskritishodh@gmail.com

प्रकाशक :
वास्तु सदन (रिसर्च सेण्टर फॉर वास्तुशास्त्र एण्ड एलाइड साइन्सेज)
103, फर्स्ट फ्लोर, वर्द्धमान ए.सी. मार्केट, विज्ञान विहार, दिल्ली-110092
फोन नं.: +91-98188 77098, +91-11-2214 8840
ईमेल: editor@sthapatyam.com, rpandey@sthapatyam.com

लेजर कम्पोजिंग :
स्थापत्यम् (जर्नल ऑफ दि इण्डियन साइन्स ऑफ आर्किटेक्चर एण्ड एलाइड साइन्सेज)
103, फर्स्ट फ्लोर, वर्द्धमान ए.सी. मार्केट, विज्ञान विहार, दिल्ली-110092
फोन नं.: +91-98188 77098, +91-11-2214 8840
ईमेल: editor@sthapatyam.com, rpandey@sthapatyam.com

मुद्रक :
बी.बी. ग्राफिक्स
ए-23, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110020

पुरोवाक्

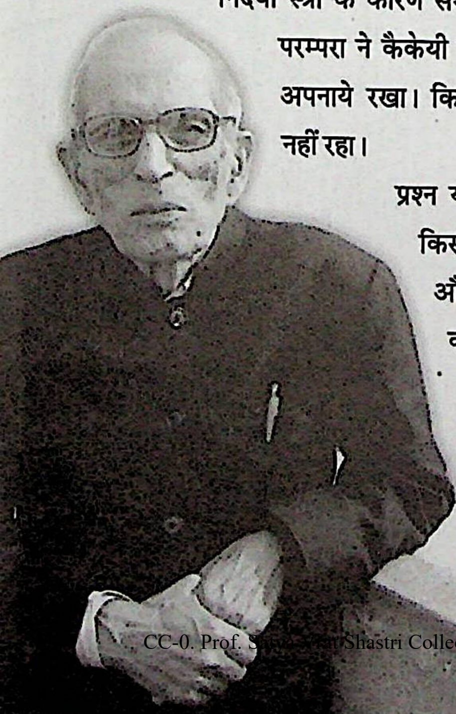
पद्मभूषण प्रो. सत्यव्रत शास्त्री

ज्ञानपीठ सम्मानित

पूर्व कुलपति

श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी, उड़ीसा

रामायण के नारी पात्रों में से एक जिसे सभी अनर्थों, कष्टों और दुःखों का मूल माना जाता रहा है — कैकेयी है। प्रचलित कथानक के अनुसार देवासुर-सङ्ग्राम में प्राण बचाने हेतु पति दशरथ ने उसे दो वर दिये थे। समय आने पर उनके माँगने की बात कह कर उन्हें उस समय न माँग राम के राज्याभिषेक के अवसर पर उन्हें माँगा। उसकी माँग थी अपने पुत्र भरत का राज्याभिषेक तथा राम के लिये 14 वर्ष के लिये वनवास। यदि उसने उन वरों को न माँगा होता तो *रामायण* का प्रणयन ही न हुआ होता। न राम जङ्गल जाते, न सीता हरण होता, न राम-रावण युद्ध होता, न सीता की अग्निपरीक्षा होती और न ही अन्त में होता उनका भूमि में विलय। वह सारा घटनाचक्र जिस हठी, स्वार्थी, पुत्रमोहग्रस्त निर्दयी स्त्री के कारण सम्भव हुआ वह है कैकेयी। भारतीय और भारतीयेतर परम्परा ने कैकेयी को खलनायिका मान उसके प्रति घृणा का भाव ही अपनाये रखा। किसी नवजात कन्या का नाम कैकेयी उसे स्वीकार्य नहीं रहा।



प्रश्न यह है कि क्या कैकेयी वास्तव में इतनी बुरी थी। किसी को बुरा कह देने से ही क्या कोई बुरा हो जाता है और बुरा मान लिया जाता है। क्या किसी को बुरा सिद्ध करने के लिये प्रमाण/णों की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। न्याय प्रक्रिया भी किसी को आरोपी सिद्ध करने के लिये प्रमाण माँगती है। क्या ये प्रमाण कैकेयी के लिये आवश्यक नहीं हैं।

कैकेयी का उतना अपराध नहीं था जितना कि माना जा रहा है यह *रामायण* के प्रमाणों से ही सिद्ध है। और इन प्रमाणों को उपस्थित किया है *रामायण* का गहन अध्ययन कर भारतीय विद्या के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने। उनके प्रमाणों और उनके आधार पर प्रस्तुत तर्कों में सबसे प्रबल वह है जिसमें कैकेयी के विवाह को शुल्क विवाह के रूप में *रामायण* में वर्णित किया गया है। जब भरत श्रीराम को अयोध्या लौट चलने और वहाँ राज-पाट सम्भालने के लिये कहते हैं तो वे उन्हें बताते हैं कि जब हमारे पिता ने तुम्हारी माता (कैकेयी) से विवाह की बात चलाई थी तो उन्होंने तुम्हारी नानी (मातामही) को राज्यशुल्क का वचन दिया था जिसका अर्थ था कि उनकी पुत्री (कैकेयी) की जो सन्तान होगी वही राजा बनेगी। उस वचन के अनुसार कैकेयी की सन्तान को अर्थात् तुम्हें ही राजा बनना चाहिये। तभी पिता का वचन सत्य होगा। इस दृष्टि से मेरा अयोध्या में वापिस जाना और राज-पाट सम्भालना उचित नहीं होगा। यदि यह होता है तो पिता का वचन भङ्ग होगा जोकि 'रघुकुल रीति सदा चलि आई प्राण जाय पर वचन न जाई' के अनुरूप न होकर कुल के लिये अपयश का कारण बनेगा। श्रीराम के अनुसार यह एक कारण है उनके अयोध्या में वापिस न जाने का। पर कदाचित् यह उतना प्रबल न हो क्योंकि सशर्त विवाह खेल-खेल में भी कर लिया जाता है जिसे शास्त्रों में नर्म विवाह की संज्ञा दी गई है और उसके दौरान दिया गया वचन असत्य की कोटि में नहीं आता - **न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले** - इसलिये श्रीराम देवासुर-सङ्ग्राम में कैकेयी को दिये गये वर की भी चर्चा करते हैं जिसे माँगने पर न दिया जाना वर देने वाले को मिथ्याभाषी होने का दोषी बना देता है जो श्रीराम और भरत दोनों में से किसी को अभीष्ट नहीं होगा। यहाँ वे 'वरम्' शब्द का ही प्रयोग करते हैं - **सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः**। यही स्थिति बालकाण्ड के श्लोक 1.22 में है। वहाँ भी कैकेयी ने राजा से वर माँगा - **वरमेनमयाचत** - यह कहा गया है। दशरथ ने वर एक ही दिया था दो नहीं और वह था श्रीराम का विवासन और भरत का राज्याभिषेक जहाँ तक मूल पाठ का सम्बन्ध है वर के विषय में बड़े असमञ्जस की स्थिति है। जहाँ 'वरम्' यह पाठ है वहाँ '**अयाचत वरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी**' यह पाठ भी है जहाँ 'द्वौ वरौ' का स्पष्ट उल्लेख है। विद्वद्वर प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय के अनुसार यह विषमता बाद के प्रति-संस्कर्ताओं द्वारा किये गये उलट-फेर का परिणाम है जो कि कैकेयी को दोषी सिद्ध करने की भावना से प्रेरित था। यह भावना उनमें क्यों आई यह एक यक्ष प्रश्न है जो कि यक्ष प्रश्न ही बना रहेगा।

रामायण के सम्प्रति उपलभ्यमान पाठ से स्पष्ट है कि कैकेयी के मन में श्रीराम के लिये कोई दुर्भाव नहीं था। स्थिति यहाँ तक थी कि जब मन्थरा स्वाभाविक रूप से घूमती-घामती राजमहल के छत पर पहुँच जाती है और वहाँ से अयोध्या में उत्सव का वातावरण देख पास में खड़ी धात्री से यह जान कि अगले ही दिन श्रीराम का राज्याभिषेक हो रहा है, कैकेयी के कक्ष में आ उसे निद्रा से जगा यह सूचना देती है कि वह तो सोती ही रह गई और दूसरी ओर श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी और वह भी अगले ही दिन किये जाने की हो भी गई। यह सुन कैकेयी आत्मविभोर हो गई। इतना प्रिय समाचार देने हेतु उसने उसे उपहार स्वरूप दिव्य आभूषण दिया - **दिव्याभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्।** वह यह भी बोली कि मेरे लिये भरत और राम में कोई अन्तर नहीं है। राजा श्रीराम का राज्याभिषेक कर रहे हैं इससे वह बहुत सन्तुष्ट है - **तस्मात्तुष्टामि यद्रामं राजा राज्येऽभिषेक्ष्यति।** इस प्रसन्नता के आवेग में वह मन्थरा को वर भी देती है और कहती है कि तू माँग ले जो तू चाहती है - **वरं परं ते प्रददामि तं वृणु।**

यह तो मन्थरा के उकसाने के बाद उसका हृदय परिवर्तन हुआ और उसने उसके कहे अनुसार राजा से दो वर माँग लिये जो उन्होंने देवासुर-सङ्ग्राम के अवसर पर उसे दिये थे - **वरौ देयौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते।** उनमें पहला था जिस अभिषेक सामग्री से श्रीराम का अभिषेक किया जाना था उसी से भरत का अभिषेक किया जाय और दूसरा श्रीराम को चौदह वर्ष के लिये दण्डकारण्य में भेज दिया जाय। (अयोध्याकाण्ड, 11.25-26)

वर की सङ्ख्या के विषय में *रामायण* में बड़ी विचित्र स्थिति है। अयोध्याकाण्ड का सारा का सारा नवम सर्ग एक वचन और द्विवचन के झूले में झूल रहा है। एक ही पद्य में जहाँ पूर्वार्द्ध में वर का द्विवचन में, 'वरौ' का ही प्रयोग नहीं अपितु उसके साथ 'द्वौ' का प्रयोग भी है - **दत्तौ ते द्वौ वरौ** (मन्थरा कैकेयी को याद दिला रही है) वहीं उसी पद्य में, उत्तरार्ध में, एक वचन का भी प्रयोग है - **स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदिच्छेयं तदा वरं गृहणीया,** देवि कैकेयी! जब पति ने तुम्हें दो वर दिये तब तुमने उनसे कहा कि जब चाहूँगी तब वर माँग लूँगी। वह कैकेयी को समझाती है कि वह मैले-कुचैले वस्त्र पहिन क्रोधागार में प्रवेश कर जाय और जब राजा उसे मनाने आयें और भावविह्वल होकर उसे उठायें तो उन्हें देवासुर-सङ्ग्राम के समय उन्होंने जो दो वर दिये थे - **यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ** - उसका स्मरण कराकर श्रीराम का चौदह वर्ष के लिये सुदूर के जङ्गल में वास तथा भरत के राज्याभिषेक का वर माँग लेना -

त्वमिमं वृणुया वरम्। रामं प्रव्रजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च। भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ।

वर के किसी एक पद्य में एकवचन में प्रयोग के आधार पर किसी ठोस निर्णय पर पहुँचना बहुत जोखिम भरा काम है।

भरत के राज्याभिषेक तथा राम के वनवास के प्रसङ्ग में दो प्रश्न यहाँ आ खड़े होते हैं। एक का सम्बन्ध मन्थरा और कैकेयी से है और दूसरे का श्रीराम से।

मन्थरा को *रामायण* में 'ज्ञाति-दासी' कहा गया है। वह पितृकुल से कैकेयी के साथ आई थी। उसे श्रीराम के राजा न बनाये जाने के लिये जो उपाय सूझा वह उन दो वरों का ही था जो महाराज दशरथ ने कैकेयी को देवासुर-सङ्ग्राम में प्राणरक्षा हेतु कैकेयी को दिये थे। ज्ञाति-दासी होने के कारण कैकेयी की माता द्वारा उसके विवाह के अवसर पर राज्यशुल्क की बात उसे ज्ञात होनी ही चाहिये थी। क्यों नहीं उसने उसे श्रीराम के राजा न बनाये जाने के तर्क के रूप में प्रस्तुत करने का सुझाव कैकेयी को दिया।

किञ्च, कैकेयी को भी यह बात ज्ञात होगी ही। तो क्यों कैकेयी ने मन्थरा द्वारा रटाई गई बात ही दशरथ से कही? क्या उसे इसका विस्मरण हो गया था। जब श्रीराम तक को यह बात ज्ञात थी – जब भरत उन्हें अयोध्या में लौटने के लिये और राज-पाट सम्भालने के लिये कहने के लिये आते हैं तो श्रीराम इसकी चर्चा करते हैं और कहते हैं कि तुम्हारी नानी ने राज्यशुल्क (कैकेयी का जो पुत्र होगा वही राजा होगा) का वचन दशरथ से लिया था – तो यह सम्भव नहीं लगता कि कैकेयी को यह बात ज्ञात न हो। इसीलिये दशरथ इस भय से कि कहीं कैकेयी श्रीराम के राज्याभिषेक में इस शर्त के आधार पर विघ्न न डाल दे तुरत-फुरत राज्याभिषेक की प्रक्रिया पूरा कर देना चाहते थे। उन्होंने श्रीराम को अपने पास बुलाया और कहा – इस तरह के कार्यों में बहुत विघ्न आ जाया करते हैं – **भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि** – इस समय भरत इस नगर से दूर है और यही समय है तुम्हारे अभिषेक का। भरत साधुपुरुष है, अच्छा है, ज्येष्ठानुवर्ती है पर फिर भी मनुष्य के चित्त का क्या कहा जा सकता है।

यहाँ प्रश्न है कि श्रीराम ज्येष्ठ पुत्र थे। परम्परा के अनुसार राज्य के उत्तराधिकारी वही थे। फिर भरत बीच में कहाँ से आ गये। क्यों राजा दशरथ के मन में भरत को लेकर सन्देह था। यदि और पुत्र भी उत्तराधिकारी हो सकते थे तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न का नाम राजा ने क्यों नहीं लिया? क्यों भरत तक ही वे अटक गये। स्पष्ट है राज्यशुल्क की बात उनके मन

में थी और वे चतुराई से भरत को नाना के घर भेजकर अपना रास्ता निष्कण्टक कर श्रीराम को राज्य सौंप देना चाहते थे।

अब प्रश्न यह है कि जब श्रीराम को यह ज्ञात था कि उनके पिता ने भरत की नानी (मातामही) को यह वचन दे रखा है कि कैकेयी की सन्तान अर्थात् भरत को राज्य जायेगा तो उन्होंने उन्हें (पिता को) राज्यशुल्क का स्मरण दिलाते हुये (जब कि उन्होंने भरत का प्रसङ्ग छेड़ ही दिया था जिसके अनुसार राज्य भरत को जाना चाहिये था) राज्य सिंहासन लेने से मना क्यों न कर दिया। यदि राजा को अपने वचन का पक्का हाने को सिद्ध करने के लिये वरों के माध्यम से राज-पाट त्यागा वह बिना इनके माध्यम से राज्यशुल्क के आधार पर ही इसे त्याग सकते थे और उतने ही महान् - शायद उससे भी कहीं अधिक - बने रह सकते थे जितने कि वरों के कारण त्याग करने हेतु बने।

और फिर आगे का घटनाचक्र क्या होता कौन कह सकता है? तब शायद राक्षसों का संहार न होता, उनकी मनमानी, उनके अत्याचार, उनकी अनैतिकता चलती रहती। इससे देवताओं का जो प्रयोजन था वह सिद्ध न होता।

कैकेयी राज्यशुल्क की बात कह श्रीराम को राजा बनाने से रोकती तो वह समस्त लाञ्छनों से, अवमाननाओं से, तिरस्कारों से मुक्त हो जाती और ये सब लग जाते राजा दशरथ पर जो अपने वचन के पक्के न रहे और जिन्होंने अपने कपटपूर्ण व्यवहार द्वारा सत्य को असत्य में परिवर्तित करने का असफल प्रयास किया।

प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने राज्यशुल्क की घटना को अपनी मान्यता की आधारशिला बना अपनी कृति में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यदि इस आधार पर कैकेयी ने अपने पुत्र के लिये राज माँगा तो अनुचित नहीं किया। अनुचित तो दशरथ करने जा रहे थे। उसने उन्हें उसके लिये रोका और मिथ्याभाषी होने के कलङ्क से उनकी रक्षा की। शुल्क विवाह कैकेयी के प्रसङ्ग में ही हुआ हो यह बात नहीं थी प्राचीन संस्कृत वाङ्मय एवं पुरातत्व से अनेक उदाहरण प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः भरत राज्य के उत्तराधिकारी थे इसके सङ्केत भी उन्होंने रामायणोत्तरवर्ती वाङ्मय से प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार जब *रामायण* का प्रति-संस्करण हुआ तो वरों का प्रसङ्ग उसमें जोड़ दिया गया और श्रीराम को राज्य से वञ्चित करने का तथा उनके वनगमन का प्रसङ्ग जोड़ दिया गया और सारा दोष कैकेयी पर मढ़ दिया गया जब कि विवाह शुल्क के रूप में उसके पुत्र को राज्य देने के दशरथ के वचन के कारण राज्य उसके पुत्र को ही जाना चाहिये था।

'विवासन' शब्द की भी उन्होंने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर वस्त्र-परिवर्तन तथा कृत्य से पृथक् करना इस रूप में व्याख्या की है जिससे अभिप्राय है श्रीराम का राजसी वस्त्रों के स्थान पर सामान्य वस्त्र धारण करना और राज्याभिषेक की क्रिया से उनको पृथक् करना। यह *रामायण* में दिये गये कैकेयी के उस कथन से मेल खाता है जहाँ कहा गया है 'जिस सामग्री से श्रीराम का अभिषेक किया जाना था उसी का भरत के अभिषेक के लिये उपयोग किया जाय'।

रामायण की यह एक विचित्र स्थिति है कि जिस शर्त के आधार पर कैकेयी के विवाह का निश्चय हुआ था उसका शब्दत: उल्लेख केवल एक ही बार और वह भी न दशरथ द्वारा, न मन्थरा द्वारा, न कैकेयी द्वारा और न ही किसी और के द्वारा अपितु श्रीराम के द्वारा हुआ है। यदि श्रीराम के द्वारा इसका उल्लेख न हुआ होता तो यह सशर्त विवाह वाली बात अनकही होने के कारण अनजानी ही रह जाती। सशर्त विवाह की बात को इतना पीछे कर वरों की बात को इतना तूल क्यों दिया गया यह समझ से परे की बात है। जिस एक बात को सामने लाने से श्रीराम का राज्याभिषेक रुक सकता था उसके लिये वरों को आगे लाने की क्यों आवश्यकता समझी गई ? प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने इसी की ओर अपनी वैदुष्यपूर्ण कृति में ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने कैकेयी को उपेक्षा के गर्त से निकाल उसे सही स्थान पर प्रतिष्ठित किया है और उसी के आधर पर कैकेयी को निन्दा, घृणा और अपवाद के जाल से मुक्त करने का साहसिक प्रयास किया है जिसके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं।

मैं उनके सुदीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार प्राचीन वाङ्मय में अन्तर्निहित तथ्यों को उजागर कर मानव-मनीषा को उपयोगी ज्ञान-राशि से समृद्ध करते रहें।

सत्यव्रतशास्त्री

(सत्यव्रत शास्त्री)

सी-248, डिफेंस कॉलोनी
नई दिल्ली
18 अक्टूबर 2016

समर्पण



अयोध्या कार-सेविका स्वर्गीया धर्मपत्नी

श्रीमती इन्दुबाला पाण्डेय

की

पुण्य-स्मृति में समर्पित

— दीनबन्धु पाण्डेय

कैकेयी के प्रति राम का कथन

तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति

कालिदास, *रघुवंश*, 14.16

पूर्व कथ्य

श्रीमद्भगवद्गीता के 10वें अध्याय के कृष्ण की विभूतियों के वर्णन में श्लोक 31 के **'रामः शस्त्रभृतामहम्'** पढ़ते हुए मैं अटक गया और राम द्वारा धारण किए गए विभिन्न शस्त्रों की खोज में *वाल्मीकीय रामायण* पढ़ना आरम्भ ही किया था कि बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के 21वें श्लोक के आकर्षण में आकर दशरथ से कैकेयी के पूर्व प्राप्त वर (**पूर्वं दत्तवरा देवी**) पर दृष्टि थम गई और फिर जो शोध की प्रक्रिया आरम्भ हुई उसकी पूर्णता का परिणाम यह प्रस्तुत आलेख है।

कैकेयी को दशरथ से प्राप्त वर उपरि-उल्लिखित श्लोक में एकवचनात्मक होने से रानी को एक ही वर की प्राप्ति का सन्दर्भ मेरे कुतूहल का कारण बना। दो वरों की लोक-प्रसिद्ध अवधारणा धराशायी होती दिखी और दिखाई दिया कि किस प्रकार सोद्देश्य रूप से कैकेयी में 'दुष्टभावता' का बीजारोपण कृतिकारों द्वारा किया गया और परिणामतः वाल्मीकि की **'यशस्विनी'** कैकेयी जो कालिदास की वाणी में **'सुकृत'** करनेवाली थी लोक-निषिद्ध हो गई। कोई अपनी कन्या का कैकेयी नाम तक नहीं रखना चाहता। कैकेयी कलुषित भावना का प्रतीक पुञ्ज बन कर रह गई। वह केवल व्यङ्ग्य-बाण की वाहिका हो गई।

कैकेयी ने भरत के लिए राज्य माँगा क्योंकि उसके विवाह की यही एक अकेली शर्त थी, दशरथ के अनृत को वह ऋत में बदलना चाहती थी। कैकेयी ने राम को वनवास कभी नहीं चाहा, न दशरथ ने राम को वनवास का आदेश दिया। **'वनगमन का वरण' राम का स्वयं का निर्णय था,** *वाल्मीकीय रामायण* से प्राचीनतर ब्राह्मण-ग्रन्थों की परम्परा में वे **'राममार्गवेय'** के रूप में अभिहित हैं। कैकेयी इसकी दोषी कथमपि नहीं।

कैकेयी के मान को लोक में स्थापित करने का दायित्व उठाना होगा।

प्रस्तुत शोध की यही परिणति है।

कैकेयी सम्बन्धी प्रस्तुत निष्कर्षों के प्रति काशी के सुहृद्गण **श्रीमती प्रमिला दूबे एवं प्रो. वीरेन्द्र कुमार दूबे तथा प्रो. जय प्रकाश लाल, इंजीनियर विपिन किशोर सिन्हा, प्रो. उदय प्रताप शाही एवं डॉ. उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी** के सराहना के भाव मेरे लिए प्रोत्साहन बने कि कार्य का सम्पादन सम्भव हुआ।

वाल्मीकीय रामायण के मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इस विमर्श का सटीक शीर्षक '**राम का वनवास — कैकेयी? नहीं**' वास्तु सदन (दिल्ली) के अध्यक्ष एवं भारतीय वास्तु-विज्ञान की शोध-पत्रिका '***स्थापत्यम्***' के सुधी सम्पादक सद्यप्रयात् **श्री रामेन्द्र पाण्डेय** द्वारा सुझाया गया जिसके लिए वे सुयश के भागी हैं।

पुस्तक के शीर्षक में किञ्चित् परिवर्तन करते हुए मेरे मित्र पुराविद् **ज्ञाननिधि प्रोफेसर समरेश बन्द्योपाध्याय** (कलकत्ता विश्वविद्यालय) ने उसे '**राम का वनवास — कारण कैकेयी ? नहीं**' करने का सुझाव दिया एवं साथ ही पूरी पाण्डुलिपि पढ़ते हुए अनेक सुझाव एवं सुधार निर्देशित किए जिसके लिए लेखक उनका आभारी है।

स्वनामधन्य **पद्मभूषण प्रोफेसर सत्यव्रत शास्त्री** जी की लेखनी से प्राप्त 'पुरोवाक्' ने प्रस्तुत आलेख को महिमा प्रदान की है, यह ऋषि-कृपा बनी रहे यही निवेदन है।

मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ श्रीमती नीरू अग्रवाल (ई 84, साकेत, इन्दौर, मध्य प्रदेश), डॉ. श्रीभगवान शर्मा (आगरा) एवं सर्वश्री रामसुचित पाण्डेय (वाराणसी) का जिन्होंने चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र', हरिकृष्ण परेशान, शिवबचन चौबे सांकृत्यायन द्वारा 'कैकेयी' पर लिखी गई पुस्तकों का तथा डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू (उदयपुर) का जिन्होंने 'मन्थरा' पर लिखी गई हेमविहारी वैरागी की रचना का ज्ञान कराया जिनका उल्लेख सन्दर्भ ग्रन्थानुक्रमणी में किया गया है।

मैं सर्वाधिक अनुग्रहीत हूँ श्रीमती इन्दु तिवारी पत्नी श्री केदार तिवारी (हटवाँ, तिवारी वार्ड, भटनी, जिला देवरिया) का जिन्होंने श्री आलोक सिंह (ताड़ीघाट, जिला गाजीपुर) की पत्नी **श्रीमती कैकेयी देवी** (पुत्री श्री वासुदेव सिंह व श्रीमती मुनेसरी देवी (निवासी ग्राम भरौली आला, ताजपुर डेहमा, जिला गाजीपुर) के बारे में जानकारी दी जो आज एकमात्र वर्तमानकालिक 'कैकेयी' नामधारी नारी हैं।

कैकेयी एवं उनके पति आलोक सिंह के छवि-चित्र केदार तिवारी जी ने और कैकेयी के माता-पिता के चित्र प्रिय लक्ष्मीनिधि चौबे (बालापुर, यूसुफपुर मोहम्मदाबाद, गाजीपुर) ने प्राप्त कराया है जिसके लिए उन्हें साधुवाद है।

डॉ. ज्ञानेन्द्र नारायण राय का श्रीमती कैकेयी का छवि-चित्र प्राप्त करने के लिए किया गया परिश्रम स्वागत योग्य है। पुस्तिका का स्वरूप श्री नितीश कुमार के सहयोग के बिना सम्भव न होता, उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी शुभकामना है।

— दीनबन्धु पाण्डेय

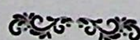
राम का वनवास – कारण कैकेयी? नहीं

वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विमर्श

जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन।
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।।

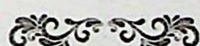
वाल्मीकीय रामायण, 6.130.49

विषय-विमर्श-क्रम



राम का वनवास कारण कैकेयी? नहीं

वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विमर्श



1
भारतीय परम्परा में इतिहास एवं महाकाव्य ग्रन्थ

वाल्मीकीय रामायण और *महाभारत* नामक महाकाव्य भारतीय परम्परा में इतिहास के रूप में प्रसिद्ध हैं (**इतिहासं पुरातनम्**)। अतः इन ग्रन्थों में सन्दर्भित किन्हीं घटनाओं को केवल काव्य और कथानक के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि उनके **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी अधीत करना चाहिए।**

2
मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग

वाल्मीकीय रामायण का मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग ऐसा ही एक रोचक अंश है जिसकी **साहित्यिक और इतिहास-परक छान-बीन आवश्यक** है जो अभी तक सन्तोषजनक रूप से नहीं की गई है।

3

नारद कथित रामचरित वाल्मीकि के महाकाव्य का आधार

रामचरित का काव्य रामायण आज जिस रूप में प्राप्त है उसे *वाल्मीकीय रामायण* के नाम से जाना जाता है। इस *वाल्मीकीय रामायण* (गीता प्रेस संस्करण, आगे के सन्दर्भों में संक्षेप *वा.रा.*) में नारद ने सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति के रूप में राम का उल्लेख करते हुए उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं का क्रमिक विवरण बताया है[1] जो वाल्मीकि द्वारा रचे गए महाकाव्य का आधार है (**वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्**[2])।

4

राम के राज्यारोहण के समय कैकेयी का प्रतिरोध

नारद के कथन में राम के राज्यारोहण के समय कैकेयी द्वारा प्रतिरोध उत्पन्न करने की बात कही गई है। कैकेयी ने राम के राज्यारोहण के लिए जुटाई गई सामग्रियों को देखकर प्रतिरोध किया। कैकेयी को पहले से वर प्राप्त था (**पूर्वं दत्तवरा देवी**[3]) जिसे उसने ले लिया (**वरमेनमयाचत = वरम्+ एनम्+अयाचत**), यहाँ 'अयाचत' का तात्पर्य 'माँगना' नहीं है बल्कि पूर्व प्राप्त को 'ले लेना' है। यह वर – '**भरतस्याभिषेचनम्**' [4] था। यह वर कैकेयी ने इस प्रकार लिया कि 'राम का विवासन और भरत का अभिषेचन' हो (**विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्।**[5])। नारद द्वारा उद्धृत कैकेयी के इस पदांश की विवेचना हम आगे करेंगे (द्रष्टव्य, पृष्ठ 30-34)।

---

1. *वा.रा.*, 1.1.7-97
2. वही, 1.2.33
3. वही, 1.1.22
4. वही
5. वही

5

कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति का घटना-स्थल

दशरथ की भार्या कैकेयी ने अपना पूर्व प्राप्त वर राम के '**अभिषेक के तैयारी की सामग्रियों को देख कर**' (**तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी।**[1]) लिया। कैकेयी का अवरोध **अभिषेक के आरम्भ के अवसर पर** ही किया गया था इसका प्रमाण रामकथा पर आधारित महर्षि वाल्मीकि के उपरान्त रचना करने वाले प्रथम नाटककार भास (ईसापूर्व पहली शती) के *प्रतिमानाटक* से भी मिलता है जहाँ नारद द्वारा बताये गए इतिहास का ही अनुगमन किया गया है। भास का वर्णन बड़ा ही रोचक है — राम स्वयं सीता से कहते हैं कि अभिषेक के समय हमारे दो भाई मङ्गल-कलश लिए थे और राजा स्वयं भावाश्रुपूरित स्थिति में छत्र लिए हुए थे, इसी बीच मन्थरा ने आकर राजा के कान में कुछ फुसफुसाया और रङ्ग में भङ्ग हो गया -

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रं स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा।।[2]

कालिदास ने भी *रघुवंश* में जो वर्णन दिया है उससे कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति का घटना-स्थल **अभिषेक का स्थान** ही जान पड़ता है-

तस्याभिषेकसम्भारं कल्पितं क्रूरनिश्चया।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः।।
... ...
पित्रा दत्तां रुदन्रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत्।।[3]

---

1. *वा.रा.,* 1.1.21
2. *प्रतिमानाटक,* 1.7
3. *रघुवंश,* 12.4 एवं 7

कोप-भवन में कहे गए कैकेयी के इस अधोरुद्धृत श्लोक से भी घटना-स्थल अभिषेक-स्थान ही जान पड़ता है-

अभिषेक समारम्भो राघवस्योपकल्पितः।।
अनेनैवाभिषेकेन भरतो मेऽभिषिच्यताम्।[1]

वाल्मीकीय रामायण में यद्यपि अभिषेक के दिन दशरथ द्वारा बुलाए जाने पर राम अपने महल से कैकेयी के महल में आते हैं ऐसा वर्णित है[2] किन्तु एक स्थान पर दशरथ कहते हैं कि राम जब अभिषेक के लिए यहाँ आए थे उस समय कैकेयी तूने जो कुछ कहा था उसे सुन कर मैंने उतने ही कहे गए के लिए ही प्रतिज्ञा की थी-

प्रतिज्ञातं मया तावत् त्वयोक्तं देवि श्रृण्वता।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः।।[3]

इस कथन से स्पष्ट जान पड़ता है कि कैकेयी ने जो कुछ कहा था उसका घटना-स्थल अभिषेक-स्थान ही था जहाँ राम उपस्थित थे। लक्ष्मण ने भी वन में आने का कारण हनुमान से बताते हुए अभिषेक होते समय ही विघ्न आने की बात कही है कि जब इन्हें (राम को) राज्य-सम्पत्ति से संयुक्त किया जा रहा था, उस समय कुछ ऐसा कारण आ पड़ा कि ये (राम) राज्य से वञ्चित हो गए और हम साथ ही वन में रहने के लिए यहाँ आए हैं-

राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा।
राज्यात् भ्रष्टो मया वस्तु सार्द्धमिहागतः।।[4]

दशरथ एवं लक्ष्मण-कथित ये श्लोक मूल-कथा के सूत्रों का एक अंश हैं।

---

1. *वा.रा.*, 2.11.24-25
2. वही, 2.15, 2.17, 2.18
3. वही, 2.38.11
4. वही, 3.4.10

6
भार्या कैकेयी का वर

यह महत्वपूर्ण है कि कैकेयी ने जो वर माँग लिया वह उसे पहले से ही दिया गया था (**पूर्वं दत्तवरा देवी**[1])। राम का राज्याभिषेक जो हो रहा था वह कैकेयी को दिए गए वर के विरुद्ध किया जा रहा था। *वाल्मीकीय रामायण* के श्लोक 1.1.21 का '**भार्या**' शब्द का प्रयोग (**तस्याभिषेक सम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी**) यहाँ सोद्देश्य है। इससे यह सङ्केत मिलता है कि कैकेयी को जो वर प्राप्त था वह उसके विवाह के अवसर पर दिया गया था।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि दशरथ का कैकेयी से विवाह उस समय हुआ था जब उनको अन्य किसी रानी से पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई थी। यह विवाह एक सशर्त विवाह था कि कैकेयी का ही पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा। कैकेयी ने अपने इसी **वर की अवहेलना** को देख कर (**दृष्ट्वा**) अपना पूर्वप्राप्त वर लिया।

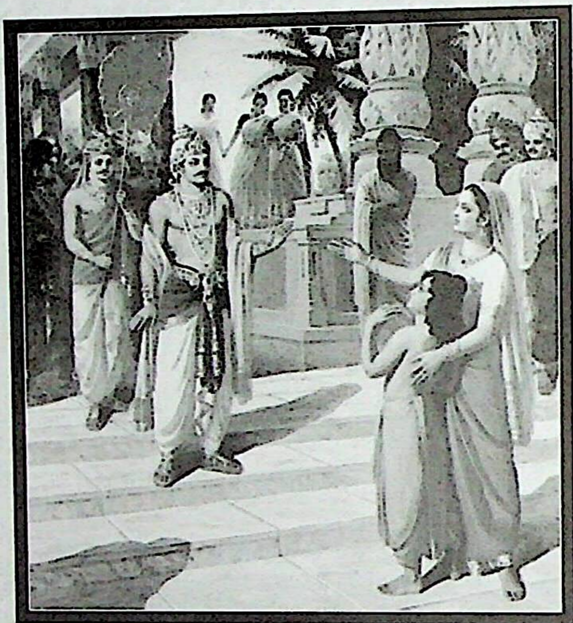
7
सशर्त विवाह के उदाहरण

सशर्त विवाह के कई उदाहरण प्राप्त हैं। यहाँ तीन महत्वपूर्ण उदाहरण सन्दर्भित किए जा रहे हैं। मत्स्यकन्या सत्यवती के सन्दर्भ में उसके पिता निषाद ने शान्तनु से इसी शर्त पर पुत्री का विवाह किया कि उसका ही पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा –

अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव।।[2]

---

1. *वा.रा.*, 1.1.22
2. *महाभारत* (गीता प्रेस संस्करण), आदिपर्व, 100.56



शर्त का अनुपालन कराने हेतु शकुन्तला और भरत दुष्यन्त की सभा में



शान्तनु-सत्यवती विवाह की शर्त रखते हुए निषाद

दुष्यन्त से शकुन्तला की भी ऐसी ही शर्त *महाभारत* में कही गई है–

मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः।
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।।[1]

ऐतिहासिक काल में चन्द्रगुप्त प्रथम से लिच्छवि राजकुमारी का सशर्त विवाह हुआ था कि उसका पुत्र लिच्छवियों तथा गुप्त राजवंश दोनों का उत्तराधिकारी होगा, इसी कारण समुद्रगुप्त को **लिच्छवि-दौहित्र**[2] की संज्ञा मिली थी। विद्वानों का यहाँ तक मानना है कि चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी सिक्के के आधार पर राजा के साथ रानी का अङ्कन एवं नामोल्लेख भी वैवाहिक शर्त के कारण किया गया।[3]

समुद्रगुप्त ने विभिन्न राज्यों से राजनीतिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता हेतु ही **'कन्योपायनदान'** की नीति अपनाई थी।[4] एरण के अभिलेख में समुद्रगुप्त की कई रानियों को **'दत्तशुल्का'** कहा गया है[5], जो पौरुष और पराक्रम से जीत कर लाई गई मात्र नहीं थीं बल्कि किन्हीं न किन्हीं शर्तों के साथ विवाहिता थीं, **'दत्तशुल्का'** शब्द उन्हीं शर्तों की ओर सङ्केत करता है। समुद्रगुप्त की राजमहिषी **दत्तदेवी** भी सम्भवतः किसी शर्त के आधार पर ही ब्याह कर आई होगी ऐसा अनुमान उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर अस्वाभाविक नहीं जान पड़ता। इतिहास में और भी कई उदाहरण हो सकते हैं।

---

1. वही, आदिपर्व, 73.16-17
2. समुद्रगुप्त की कौशाम्बी-प्रयाग प्रशस्ति, पंक्ति 28, फ्लीट, जे. एफ., *कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम,* भाग 3, कलकत्ता, 1888, टेक्स्ट एण्ड ट्रांस्लेशन, पृ. 8
3. द्रष्टव्य, ए. एस. अल्तेकर, *दि•क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर,* वाराणसी, 1957, पृ. 31
4. समुद्रगुप्त की कौशाम्बी-प्रयाग प्रशस्ति, पंक्ति 24, फ्लीट, जे. एफ., उपरिउद्धृत, पृ. 8
5. समुद्रगुप्त का एरण अभिलेख, पंक्ति 17, *पौरुष-पराक्रम-दत्तशुल्का,* फ्लीट, जे. एफ., वही, पृ. 20



लिच्छवयः



श्रीकुमार देवी चन्द्र(गुप्त)

चन्द्रगुप्त प्रथम की सुवर्णमुद्रा

पंक्ति 28

महाराजाधिराज श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

पंक्ति 29

लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य

महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य

समुद्रगुप्त के कौशाम्बी-प्रयाग स्तम्भ-लेख की पंक्ति 28 एवं 29 का अंश

8

कैकेयी के 'सशर्त विवाह' का अन्य विद्वानों के सन्दर्भ

दशरथ का कैकेयी से विवाह सशर्त हुआ था ऐसा कुछ अन्य विद्वानों का भी मानना है,[1] किन्तु श्रीकृष्ण होलाजी की प्रस्तावना मात्र काल्पनिक है, किसी प्रकार का प्रमाण विवेचित नहीं किया गया है। कैकेयी के सन्दर्भ में चिन्तन करके महाराष्ट्र के कवि चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र' ने *कैकेयी* नाम से एक खण्डकाव्य (जिसे वे महाकाव्य कहते हैं) की भी रचना 1967 ई. में की है।[2] उन्होंने अपने एक मित्र द्वारा सुने गए काशी के बालस्वामी जी के *सत्योपाख्यान* के अध्याय 8 के श्लोक 13, 14, 19 और 20 का सन्दर्भ (बिना श्लोक उद्धृत किए) अपने खण्डकाव्य में दिया है[3] जिसमें बालस्वामी जी ने कहा है कि कैकेयी का विवाह अपने पुत्र के कोसल के उत्तराधिकारी होने की शर्त पर ही हुआ था। लेकिन कवि चन्द्र ने अपनी लेखनी तबतक नहीं चलाई जब तक कि इस बात का प्रामाणिक ढङ्ग से उन्हें विश्वास नहीं हो गया, और विश्वास हुआ *वाल्मीकीय रामायण* के श्लोक 2.107.3 से जब चित्रकूट में राम ने इस बात को अपने अनुज भरत को बताया है–

पुरा भ्राता पितु नः मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमुत्तमम्।।

किन्तु कवि 'चन्द्र' मन्थरा-कैकेयी-प्रसङ्ग के पूरे परिदृश्य को समझ नहीं पाए और कैकेयी के विवाह की शर्त का सन्दर्भ मिलने के बावजूद वे विवादित देवासुर-सङ्ग्राम के दो वरों की प्राप्ति में फँसे रह गए और इस पौराणिक सन्दर्भ में भी कि राक्षसों के विनाश के लिए राम का वनवास जरूरी था।

---

1. द्रष्टव्य, श्रीकृष्णा होलाजी, 'रामायण की कैकेयी', *विश्वज्योति*, रामायण अङ्क परिशिष्ट, जून-जुलाई 1971, पृ. 188-90
2. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969 में प्रकाशित
3. कैकेयी, पार्श्वभूमि, पृ. 'ङ' (वेंकटेश्वर प्रेस से छपे '*सत्योपाख्यान*' का उल्लेख कामिल बुल्के ने भी किया है, *रामकथा : उत्पत्ति और विकास*, प्रयाग, 1960 संशोधित संस्करण; पृ. 182)

कवि 'चन्द्र' के पहले कामिल बुल्के ने 1950 ई. में अपनी *राम–कथा* के अध्ययन में (पृ. 404) एवं 1964 ई. में सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने पूना से प्रकाशित अपने *प्राचीन भारतीय चरित्रकोश* (पृ. 167) में भरत को राज्य दिए जाने की शर्त का उल्लेख किया था। एन. आर. नवलीकर ने भी इसे उद्घाटित किया जिसका आधार लेकर दीपक चन्द्र के 1983 ई. में लिखे गए उपन्यास *जननी कैकेयी* की जानकारी प्रदीप भट्टाचार्य ने कैकेयी पर लिखे अपने लेख में बोलोजी डॉट कॉम पर 24.4.2001 को दी है। इसी प्रकार ई. आई. काल ने भरत को राज्य दिए जाने की शर्त का सश्लोक उल्लेख इण्डिया–फोरम्स डॉट कॉम पर 5 जुलाई 2009 को दी है।

9

कैकेयी से जुड़े प्रसङ्ग का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आइए हम कैकेयी के प्रसङ्ग को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करें।

दशरथ का कैकेयी से विवाह एक सशर्त विवाह था इसी कारण देवर्षि नारद द्वारा **भार्या** कैकेयी '**पूर्वं दत्तवरा देवी**' कही गई।[1] दशरथ की भार्या कैकेयी ने अपने विवाह के अवसर के शर्त के विपरीत कार्य होता हुआ देखकर अपने पति से प्राप्त वर के अनुरूप कार्य करने का आग्रह किया कि राम के राज्याभिषेक के स्थान पर भरत का अभिषेक किया जाए। कैकेयी के पुत्र भरत के उत्तराधिकार का ही वर प्राप्त था। *वाल्मीकीय रामायण* इसकी पुष्टि — **पुरा भ्राता पितु नः मातरं ते समुद्वहन। मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमुत्तमम्।।**[2] — श्लोक से करता है। इस श्लोक के अनुवाद में भरत के नाना द्वारा शर्त रखे जाने की बात कही गई है, यही सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने भी कहा है[1] किन्तु श्लोक में '**मातामही**' शब्द स्पष्ट ही भरत की नानी को इङ्गित करता है जिनके द्वारा यह शर्त रखी गई थी।

1. *वा.रा.*, 1.1.21-22
2. वही, 2.107.3

भास के *प्रतिमानाटक* में भी राम ने शुल्क के माध्यम से पुत्र के लिए **विपणित राज्य** का उल्लेख किया है–

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थं यदि वाच्यताम्।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातुराज्यापहरिणाम्।।[2]

स्त्री-शुल्क के कारण दशरथ ने राज्य और प्राण दोनों खोया यह बात भरत को *प्रतिमानाटक* में सबसे पहले देवकुलिक (इक्ष्वाकु कुल के **पूर्वजों** के प्रतिमागृह का सेवक) ने बताया — **येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थं विसर्जिता:** (3.8)। *प्रतिमानाटक* में **शुल्क** का सन्दर्भ अन्यान्य स्थानों पर चार बार (2.2, 3.4, 9, 11) आया है।

राम ने चित्रकूट में भरत से कहा है कि वे पिता द्वारा अपने जीवन काल में बेची गयी, धरोहर रखी गयी या खरीदी गयी के विपरीत नहीं जा सकते–

विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवितं मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा।।[3]

और राम ने दशरथ पर कैकेयी का ऋण मानते हुए भरत को राज्य स्वीकार करके पिता को उऋण करने को कहा –

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं चापि धर्मज्ञं मातरं चाभिनन्दय।।[4]

कैकेयी *प्रतिमानाटक* के तीसरे अङ्क में भरत से कहती है कि महाराज के **सत्य-वचन की रक्षा के लिए मैंने वैसा कहा और वह सत्य-वचन था कि मेरा पुत्र ही राजा होगा–**

कैकेयी – **जात! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम्।**
भरत – **किमिति! किमिति!**
कैकेयी – **पुत्रको मे राजा भवत्विति।**

---

1. *प्राचीन भारतीय चरित्र कोश,* पूना, 1964, पृ. 167
2. *प्रतिमानाटक,* 1.15
3. *वा.रा.,* 2.111.2
4. वही, 2.107.10

10
कैकेयी का एक ही वर

'पूर्वं दत्तवरा देवी' अंश में एक ही वर का सन्दर्भ है क्योंकि यहाँ **एकवचन** का ही प्रयोग है। *वाल्मीकीय रामायण* की माहेश्वरतीर्थ की *तत्त्वदीपिका* व्याख्या भी इस एकवचन-प्रयोग का विशेष उल्लेख करती है -

वरमितिजातावेकवचनम्।

शिवसहाय प्रणीत *शिरोमणि* टीका भी एकवचन वर (**एवं वरं अयाचत**) का ही उल्लेख करती है। और वह एक वर था **'भरतस्याभिषेचनम्'**। **'विवासनं च रामस्य'** के बिना तो पूर्वप्राप्त वर सम्भव ही नहीं था। अतः राम का 'विवासन' प्राप्त 'वर' का **परिणाम** था वरद्वयस्वरूपमाह-विवासमिति (माहेश्वरतीर्थ)। वह कोई **दूसरा वर** नहीं था। दशरथ ने कैकेयी से कहा है कि तू किस भय से 'भरत को राज्य राघव को वन' इस प्रकार का (**एवं विधम्**) वर (**वरम्** एकवचनात्मक) लिया-

कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवं विधं वरम्।।
राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने।[1]

यह 'विवासन' को 'वन' में बदलने जैसा है। शिवसहाय प्रणीत *शिरोमणि* टीका **विवासनं अभिषेचनं वरम्** (एकवचनात्मक) कहती है।

मन्थरा से वार्ता में कैकेयी का स्पष्ट उद्देश्य है कि राम को किसी भी प्रकार से राजत्व न मिले और वह राजपद भरत को मिले -

भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथञ्चन।[2]

दशरथ से अपना वर माँगते समय यद्यपि दो वरों का उल्लेख आया है किन्तु मूलतः **एक ही वर** की बात कैकेयी ने अन्त में कहा है-

भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्।
एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।।[3]

---

1. *वा.रा.*, 2.12.58-59 2. वही, 2.9.3, 9.9 3. वही, 2.11.27-28

इस प्रकार स्पष्ट है कि कैकेयी को **एक वर ही प्राप्त था**, दो वर नहीं। माहेश्वरतीर्थ ने अपनी *तत्त्वदीपिका* टीका में **वरद्वयरूपमाह-विवासनमिति** कहा है और **पौराणिकी प्रसिद्धिः** के आधार का उल्लेख करते हुए देवासुर के दो वरों की याद वे दिलाते हैं।

महाभारत[1] में भी कैकेयी ने अपने **एक ही मनोरथ** की चर्चा की है

सत्यप्रतिज्ञ यन्मे त्वं काममेकं निसृष्टवान्

किन्तु श्लोक 26 में वह मनोरथ भरत का अभिषिञ्चन और राम का वनगमन कहा गया। *दसरथ जातक* (जातक सं. 461) एवं *पद्म पुराण* भी एक ही वर कहता है।[2] दूसरी सदी की चीनी बौद्ध रामकथा *दशरथ कथानम्* में ककेयी राम को वन भेजने की बात नहीं कहती है वह केवल राम को गद्दी से उतारने और अपने पुत्र के राज्याभिषेक के लिए कहती है।[3]

एक वर और उसके दो परिणाम को कालिदास ने वर्षा के समय भूमि के जलसिक्त हो जाने के कारण बिल से निकले हुए दो सर्प जैसा माना है–

उदवामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ।[4]

इसी प्रकार तुलसीदास ने इसे एक अङ्कुर के दो दलों के रूप में माना है–

पाइ कपट जल अङ्कुर जामा।
बर दोउ दल दुख फल परिनामा।।[5]

---

1. *महाभारत,* वनपर्व, रामोपाख्यानपर्व, 277.21
2. उत्तरखण्ड (गौडीय पाठ), *जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटि सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड,* 1909, पृ. 1122
3. द्रष्टव्य, कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, पृ. 63
4. *रघुवंश,* 12.5
5. *रामचरितमानस,* गीता प्रेस, अयोध्या काण्ड, दोहा संस्करण 22, चौपाई 6

कैकेयी ने राम के अभिषेक की सामग्रियों की तैयारी होते देखकर — **तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा**[1] अपने प्राप्त वर को लिया — **वरमेनमयाचत** - **वरं एनं अयाचत**।[2] '**भरतस्याभिषेचनम्**' तभी सम्भव था जब राम का '**विवासन**' होवे।

II

'विवासन' का विशिष्ट अर्थ

इस '**विवासन**' को समझने की आवश्यकता है।

वाल्मीकीय रामायण में एक स्थान पर कैकेयी के माध्यम से यह सन्दर्भ आया है कि राम के अभिषेक का जो उपकल्प किया गया है उससे ही भरत का अभिषेक कराया जाय–

अभिषेक समारम्भो राघवस्योपकल्पितः।।
अनेनैवाभिषेकेन भरतो मेऽभिषिच्यताम्।[3]

ऐसी स्थिति में राम को आसन से हटा कर राजकीय वेश को उतारकर ही कोई कार्यवाही आगे सम्भव थी। वस्तुतः यही '**विवासन**' है। कोशों में 'किसी स्थान से हटना' एवं 'वस्त्रपरिवर्तन' भी '**विवासन**' का विशिष्ट अर्थ है।[4]

वैदिक यज्ञ–विधियों में 'वस्त्रपरिवर्तन' के अर्थ में **विवस्** शब्द का प्रयोग *तैत्तिरीय संहिता* में मिलता है —

... मम नाम तव च वाससी इव विवासनौ ये चरावः।[5]

वाससी इति इव विवसाना इति वि–वसानौ ये इति चरावः। हे जातवेदः मम च तव च सम्बन्धिनो ये नामनी विवसानौ विपरिवृत्य

---

1. *वा.रा.*, 1.1.21
2. *वा.रा.*, 1.1.22
3. *वा.रा.*, 2.11.24-25
4. द्रष्टव्य, मोनियर मोनियर विलियम्स, *संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी*, ऑक्सफोर्ड, 1899, **वासन** और **विवासन** शब्द क्रमशः पृ. 947 एवं 987 पर
5. *तैत्तिरीय संहिता*, 1.5.10.2



1. Vāsas, n. (for 2. see col. 2) cloth, clothes, dress, a garment (du. an upper and under garment; cf. *vāso-yuga*), RV. &c. &c.; the 'clothing' or feathers of an arrow, MBh.; R. &c. (only ifc.; cf. *barhiṇa-v°*); cotton, L.; a pall, MW.; a screen, ib.; (with *markaṭasya*) a cobweb, L.; du. (with *samudrasya*) N. of two Sāmans, ĀrshBr.



विवस् *vi-√4. vas*, Ā. *-vaste*, to change clothes, TS.; ĀśvŚr.; to put on, don, Bhaṭṭ.: Caus. *-vāsayati* (Pass. *-vāsyate*), to put on, don, MBh.
2. Vi-vāsana, n. (for 1. see *vi-√2. vas*) being clothed in or covered with (instr.), MBh.

मोनियर विलियम्स, *संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी*, पृ. 947 एवं 987

वसानौ मम त्वंत व च नामाहमिति,अन्तोन्योन्यस्यपरिवृत्ते इव धारयन्तौ चरावः त्वं चाहं च वर्तावहे। इसी प्रकार *आश्वलायन श्रौतसूत्र* में भी उल्लिखित है— **अग्नीषु समिध उपविधायाहवनीयमुपतिष्ठते। मम नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानौ चरावः। ते विभृवो दक्षसे जीवसे यथायथं नौ तन्वा जातवेद इति।।**[1]

वस्त्र परिवर्तन से भिक्षुत्व से च्युत होने का सन्दर्भ अशोक के सारनाथ, साँची व प्रयाग के अभिलेखों में भी आया है।[2]

विवासन का एक अर्थ पृथक करना अर्थात् 'पार्थक्य' भी है।[3]

विवास का एक प्रयोग अशोक के अभिलेख में भी प्राप्त होता है जहाँ राजधानी से पृथक स्थान पर होने का सन्दर्भ है।[4] इस परिप्रेक्ष्य में

---

1. *आश्वलायन श्रौतसूत्र*, 2.5.10
2. *अशोक के अभिलेख*, राजबली पाण्डेय, वाराणसी, वि.सं. 2022, पृ. 183, 185, 187
3. *बृहद् हिन्दी कोश*, सम्पादक - कालिका प्रसाद एवं अन्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1992, पृ. 1066
4. रूपनाथ लघु शिलाभिलेख, राजबली पाण्डेय, उपरिउल्लिखित, पृ. 111, पंक्ति 6

विवासन का विशिष्ट अर्थ

'राम के विवासन' का वाच्य अर्थ राम को दिए जा रहे पद को छोड़ना और सजे-धजे राम (कालिदास ने *रघुवंश* में अभिषेक के समय राम के क्षौम वस्त्र धारण किए हुए कहा है – **दधतो मङ्गलक्षौमे**[1]) का धार्मिक कृत्यों हेतु बैठे आसन से उठकर **वस्त्र का बदलना** और हो रहे **कृत्य से पृथक होना** है।

वाल्मीकीय रामायण की शिवसहाय प्रणीत *शिरोमणि व्याख्या* में **विवासन** के लिए **उद्वासन** शब्द का प्रयोग किया गया है। मन्थरा-कैकेयी के आरम्भिक विचार-विनिमय में भी इसी बात को महत्व दिया गया है कि दशरथ को राम के अभिषेक के सङ्कल्प से हटा दिया जाय –

रामाभिषेकसङ्कल्पान्निर्गृह्य विनिवर्तय[2]

इसके पहले –

अतो हि सञ्चिन्तय राज्यमात्मजे, परस्य चैवास्य विवासकारणम्[3]

में भी 'विवास' का यही अर्थ है कि राम को **अभिषेक से वञ्चित** कर दिया जाय। 'विवास' का **'वनवास' अर्थ लेना सरासर गलत** है। कैकेयी ने एक स्थान पर दशरथ से कहा है कि **यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्**[4] जो मन्थरा द्वारा प्रयुक्त **विवास** जैसा ही है किन्तु दशरथ के राम को वनवास न देने के लिए कैकेयी से किए गए निवेदन वाले श्लोकों से जुड़े होने के कारण हिन्दी अनुवादकर्ता ने 'राम को **देश से निकाल देने** के सिवा मुझे किसी दूसरे वर से सन्तोष नहीं होगा' ऐसा अर्थ लिखा है, जो सही नहीं लगता। **देश से निकालने का** अर्थ लिया भी जाय तो वह वनवास नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि इसके पूर्व के दो श्लोकों में कैकेयी ने **राम के अभिषेक**[5] और उसके **फलस्वरूप कौसल्या के राजमाता होने की स्थिति**[6] का विरोध

---

1. *रघुवंश*, 12.8
2. *वा.रा.*, 2.9.36
3. वही, 2.8.39
4. वही, 2.12.49
5. वही, 2.12.47
6. वही, 2.12.48

करते हुए अपनी **जान दे देने की धमकी दी थी**[1] सीता ने भी अरण्यकाण्ड के एक कथन में उपरिसन्दर्भित धमकी का उल्लेख किया है किन्तु वह राम को मात्र अभिषिक्त न करने के लिए ही है- **एष मे जीवितस्यान्ते रामो यदभिषिच्यते।**[2] इस परिस्थिति में राम का विवास (या विवासन) वनगमन के सन्दर्भ में न होकर **अभिषेक से विरत करने के सन्दर्भ में अधिक समीचीन** है। स्पष्ट ही वह स्वयं राजमाता होना चाहती थी। भरत को घटनाक्रम बताते हुए भी कैकेयी ने राम के 'विवासन' का ही उल्लेख किया है-

याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्।[3]

हिन्दी अनुवाद में यद्यपि वनवास शब्द का प्रयोग है किन्तु यहाँ 14 वर्ष वा दण्डकवन का उल्लेख नहीं है। कैकेयी ने इसके पूर्व के एक श्लोक[4] में चीरधारी राम के साथ सीता और लक्ष्मण के दण्डकवन जाने का उल्लेख किया है किन्तु यह उसके दूसरे वर के कारण हुआ यह स्पष्ट नहीं कहा गया है।

'विवास' शब्द का प्रयोग सगर के पुत्र असमञ्ज के सन्दर्भ में - **यावज्जीवं विवास्योऽयमिति तान्वशात् पिता**[5] हुआ है और अनुवाद में इस विवास का अर्थ 'राज्य से बाहर निकालने' का लिया गया है। पहली बात तो यह कि यहाँ 'विवास' का अर्थ स्पष्ट ही 'वनवास' नहीं है। असमञ्ज ने स्वयं अपना आवास गिरि-दुर्गों को बनाया - **स फाल पिटकं गृह्य गिरिदुर्गाव्यलोकयत्**[6], यहाँ 'दुर्ग' का अर्थ अनुवाद में 'गुफा' लेना उचित नहीं है। गिरि-दुर्ग राज्य के ही पहाड़ी किला का अर्थ देता है। दूसरी बात यह कि असमञ्ज के सन्दर्भ में वसिष्ठ ने 'निरस्त' शब्द का प्रयोग

---

1. वही, 2.12.47
2. वही, 3.47.9
3. वही, 2.72.49
4. वही, 2.72.42
5. वही, 2.36.24
6. वही, 2.36.25

किया है (**जीवन्नेव स पिता तु निरस्तः पापकर्मकृत**[1])। 'निरस्त' शब्द का अर्थ 'राजत्व के निषेध' के रूप में लेना उचित है।

12
विवासन और वनगमन

विवासन शब्द के अन्य अर्थों के साथ विभ्रान्त होने के कारण राम का **वनगमन घटित करना** एक उद्देश्य हो गया और कैकेयी के इस कथानक को नया रङ्ग परवर्ती काल के क्षेपक रचने वाले दूषकों द्वारा दे दिया गया।

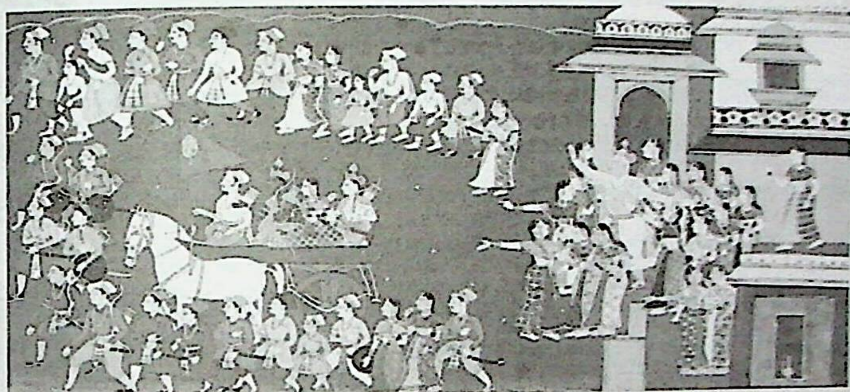
कैकेयी का कथानक कैसे नए रूप लेता गया इसकी व्याख्या बहुत रोचक है जिसे प्रमाणों के साथ आगे प्रस्तुत करेंगे।

13
वाल्मीकीय रामायण का कलेवर

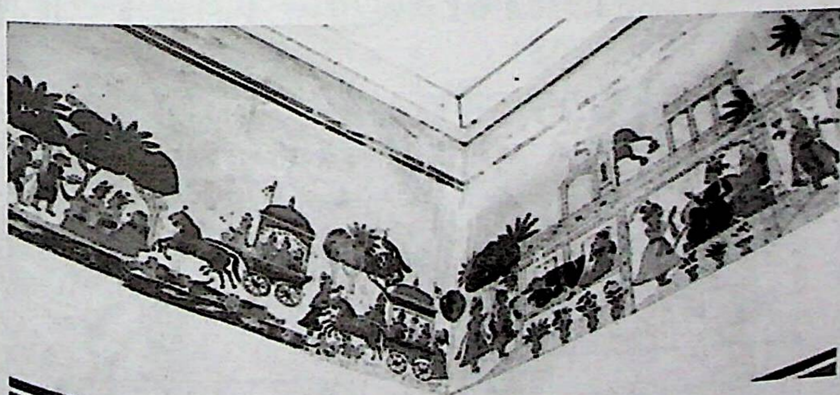
आज जो *वाल्मीकीय रामायण* प्राप्त है वह कलेवर गुप्तकाल (4थी–5वीं शती ई.) में रामायण को अन्तिम रूप दिए जाने का है, ऐसा विद्वानों का मानना है। इस कलेवर में अनेक प्रक्षिप्तांश शामिल हैं इसमें सन्देह नहीं। इस बात की भी पूरी–पूरी सम्भावना है कि कई स्थानों पर कथा–विस्तार वाल्मीकि के परवर्ती कृतिकारों ने किए। इन बातों की प्रामाणिकता संक्षेप में इस प्रकार समझी जा सकती है कि रामायण काव्य में कुल 500 सर्ग (**सर्गशतान् पञ्च एवं पञ्चसर्गशतानि**[2]) बताए गए हैं। श्लोकों की संख्या 24000 कही गई है (**चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।**[3])। जो कलेवर आज प्राप्त है उसमें युद्धकाण्ड तक 535 सर्ग हैं और उत्तरकाण्ड तक सर्गों की कुल संख्या 646 है। गीताप्रेस संस्करण में कुल 24571 और

---

1. *वा.रा.*, 2.110.26
2. वही, 1.4.2 एवं 7.94.27
3. वही, 1.4.2



अयोध्या के राज भवन से वन जाने के समय का दृश्य



मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग एवं राम वनगमन,
टेरा (कच्छ) प्रासाद-भित्ति चित्राङ्कन 1880 ई.

बम्बई संस्करण में 24049 श्लोक हैं। *वाल्मीकीय रामायण* के क्रिटिकल एडिशन में कुल 18766 श्लोक ही मूल माने गए हैं। पहली शती ईस्वी में कात्यायनीपुत्र के ग्रन्थ *ज्ञानप्रस्थान* पर लिखी गई *महाविभाषा* नामक टीका में प्रसङ्ग वश रामायण के कुल श्लोकों की संख्या 12000 ही उल्लिखित है।[1] प्रक्षिप्तांश के रूप में एक रोचक उदाहरण गीताप्रेस संस्करण में प्रकाशित अरण्यकाण्ड का 56वें और 57वें सर्ग के बीच में 'प्रक्षिप्त सर्ग' के नाम से एक सर्ग है जिसमें ब्रह्मा के कहने पर इन्द्र लङ्का में जाकर सीता को खीर खिलाते हैं। प्रक्षिप्त सर्ग मानते हुए भी इसे उपयोगी कह कर छापा गया है।[2] रामायण के आकार–प्रकार की बढ़ोत्तरी होते रहने के ये उदाहरण प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में पर्याप्त हैं।

14

रामायण के कलेवर वृद्धि के सन्दर्भ में कैकेयी के प्राप्त वर की समीक्षा

वाल्मीकीय रामायण के कलेवर वृद्धि का सन्दर्भ लेते हुए कैकेयी के प्राप्त वर की समीक्षा अपेक्षित है।

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत[3] से बहुत ही स्पष्ट है कि एक ही वर दिया गया था जो कैकेयी के पुत्र के उत्तराधिकार का था जिसे कैकेयी ने यह देखकर लिया कि राज्याभिषेक कौसल्या के पुत्र राम का हो रहा है–

तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी।।
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।[4]

1. विशेष अध्ययन हेतु द्रष्टव्य, फादर कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, ठाकुर प्रसाद वर्मा, *श्रीराम और उनका युग, पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक आकलन*, वाराणसी, 1993
2. *वा.रा.*, पृ. 622, पाद टिप्पणी 1
3. वही, 1.1.22
4. वही, 1.1.21-22

कैकेयी के वर के श्लोक की पंक्ति '**विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्**'[1] का भी विमर्श किया जाना चाहिए। सामान्य रूप से इस अंश का अर्थ 'राम का विवासन अर्थात् वनगमन और भरत का अभिषेचन' समझा जाता है जबकि राम का 'विवासन' अर्थात् राम के अभिषेक का रोका जाना और तभी बाद में भरत का अभिषेचन होना समझा जाना चाहिए। देवर्षि नारद के द्वारा एकवचन में उल्लिखित वर भरत के अभिषेक का ही है। कैकेयी ने अन्य स्थानों पर भी भरत के अभिषेक की बात ही पहले कही है, इस सन्दर्भ में कोप-भवन में दशरथ से वर माँगने के समय, और दशरथ से प्राप्त अपने वर को राम से बताते समय भरत के अभिषेक की बात को ही पहले रखने वाले श्लोक उल्लेख्य हैं-

अनेनैवाभिषेकेन भरतो मे अभिषिच्यताम्।[2]
... ...
तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।[3]

15

'समय' का अर्थ

कैकेयी को जो वर प्राप्त था उसे '**समय**' कहा गया है-

समयं मानृतं कार्षी ...[4],
समयं च ममार्येयं यदि त्वं न करिष्यसि[5]
... ...
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतः[6]

महाभारत में शकुन्तला ने भी दुष्यन्त से अपने पुत्र के लिए उत्तराधिकार की जो शर्त रखी उसे '**समय**' शब्द से ही अभिहित किया गया है-

गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि।। ...

---

1. *वा.रा.*, 1.1.22
2. वही, 2.11.25
3. वही, 2.18.33
4. वही, 2.12.44
5. वही, 2.14.10
6. वही, 2.109.16

प्रदाने पौरवश्रेष्ठो श्रृणु में समयं प्रभो।। ...
मयि जायेत् यः पुत्रः स भवेत्वदनन्तरः।।
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते। ...
एवमस्त्वति तां राजा प्रत्युवाच विचारयन्।[1]

'समय' के सन्दर्भ में एक बात विशेष रूप से कही जाती है कि जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा नहीं लाँघ सकता उसी प्रकार **'समय'** की भी मर्यादा भङ्ग नहीं की जाती–

समयं सागरः कृत्वा न वेलामतिवर्तते।[2]

निक्षिप्त वर जिसका कथन वा वचन पहले से स्पष्ट न हो उसके सन्दर्भ में **'समय'** का प्रयोग उपयुक्त नहीं है। पहले से स्पष्ट रूप से दिये गए कथित वर की ही मर्यादा रखी जा सकती है। शान्तनु ने सत्यवती से विवाह के पूर्व निषाद द्वारा **'समय'** अर्थात् **शर्त** को पहले पूछा और कहा कि देने लायक होगा तो दूँगा अथवा नहीं–

श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं तव।
दातव्यं चेत प्रदास्यामि न त्वदेयं कथञ्चन।।[3]

प्रतिमानाटक के चौथे अङ्क में भरत ने भी राम से **'समय'** (शर्त) के साथ ही अपने पास निक्षिप्त राज्य का भार स्वीकार किया (**भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि**)। राम ने भरत के **समय** को पूछा — **कः समयः**। भरत की शर्त थी कि 14 वर्ष के बाद आप मेरे पास निक्षिप्त अपना राज्य पुनः ग्रहण करेंगे–

मम हस्ते निक्षिप्तः तव राज्यं चतुर्दश वर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि।
और राम ने स्वीकृति दी– **एवमस्तु।**

---

1. *महाभारत,* आदिपर्व, 73.14, 15, 16, 17, 18
2. *वा.रा.,* 2.12.44, 2.14.6 भी द्रष्टव्य
3. *महाभारत,* आदिपर्व, 100.55

16

राम के राज्यारोहण के स्थगन की सूचना

भरत के उत्तराधिकार के **'समय'** का उल्लङ्घन होते देख कैकेयी ने भरत के अभिषेक की बात कही। पहले से ही दिए गए वचन में व्यतिरेक के कारण कैकेयी ने रङ्ग में भङ्ग किया। नारद द्वारा उल्लिखित वर एक शर्त थी जिसे **'समय'** कहा गया है[1] और परिभाषित किया गया है।[2] वह प्रतिदानात्मक वर नहीं था जैसा कि देवासुर-सङ्ग्राम के वर कहे गए हैं और नासमझी के कारण **'समय'** को प्रतिदानात्मक वरों के साथ जोड़ दिया गया। इससे स्पष्ट है कि राम के विवासन (पद से हटने के बाद) ही भरत का अभिषेक सम्भव था और यही दशरथ ने किया-

विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्।[3]

इस श्लोक के हिन्दी अनुवाद में विवास का वनवास अर्थ मानना गलत है। यहाँ सन्दर्भ केवल राज्याभिषेक से विरत करने का है। दशरथ ने जिस प्रकार राम के राज्याभिषेक की राजाज्ञा को लोक प्रसिद्ध किया था-

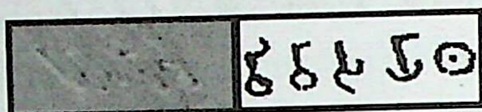
अद्य रामाभिषेको वै प्रसिद्धो वै जज्ञिवान्।।[4]

उसी प्रकार **विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्** में राज्याभिषेक से विरत करने की राजाज्ञा को अन्यान्य लोगों तक पहुँचाने का अर्थ है।

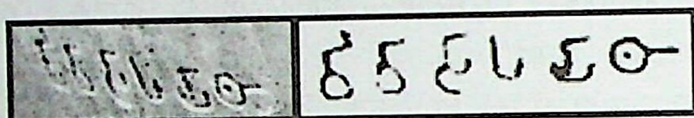
अशोक के सारनाथ स्तम्भ अभिलेख में **विवासयाथ** (पंक्ति 10) एवं **विवासापयाथा** (पंक्ति 11) शब्द प्रयुक्त हैं जिनका संस्कृत रूपान्तर **'विवासयत'** किया गया है और इस शब्द का प्रयोग अशोक की उस आज्ञा के अर्थ में किया गया है कि बौद्ध-सङ्घ का भेद करने वाले भिक्षु को पीले वस्त्र

---

1. *वा.रा.*, 2.14.10,
2. वही, 2.14.6
3. वही, 1.1.23
4. वही, 2.10.10



विवासयाथ
पंक्ति 10



विवासापयाथा
पंक्ति 11

सारनाथ का अशोक स्तम्भ-लेख

के स्थान पर श्वेत वस्त्र पहना कर भिक्षुत्व से पदच्युति सम्बन्धी अशोक की आज्ञा को महामात्र के कार्यक्षेत्र एवं सभी कोट और विषयों में सूचनार्थ अक्षरशः भेजी जाय–

आवतके च तुफाकं आहाले सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन। हेमेव सवेसु कोट विषवेसु एतेन वियंजनेन विवासापयाथा।

संस्कृत रूपान्तरण–

यावत्कं च युष्माकम् आहारः सर्वत्र विवासयत यूयम् एतेन व्यञ्जनेन। एवं एव सर्वेषु कोट्ट–विषयेषु एतेन व्यञ्जनेन विवासयत।[1]

इस प्रकार **'विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्'** से दशरथ द्वारा अपने प्रिय पुत्र राम के राज्यारोहण के स्थगित करने की सूचना के प्रसारित करने का अर्थ निकलता है। राम के राज्यारोहण के निर्णय की घोषणा की गयी थी (**अद्य रामाभिषेको वै प्रसिद्धो वै जज्ञिवान्।।**[2]), इस बात का उल्लेख दशरथ ने कैकेयी से भी किया है कि मैंने यह निर्णय सुहृदों से विचार करके लिया है, अकेले में नहीं लिया है।

तां तु ये सुकृतां बुद्धिं सुहृद्भिः सह निश्चिताम।।[3]

... ...

शून्येन खलु सुश्रोणी मयेदं समुदाहृतम्।[4]

अतः राज्यारोहण के स्थगन की सूचना का प्रसारित होना स्वाभाविक था।

वाल्मीकीय रामायण एक काव्य–कृति है **विवासनम्**[5] और **विवासयामास**[6] में **विवास** शब्द का प्रयोग दो बार होने से काव्य में अलङ्कार आ जाता है और एक जैसे लगने वाले दोनों शब्दों के अर्थ वैभिन्य

---

1. *अशोक के अभिलेख,* राजबली पाण्डेय, उपरिउल्लिखित, पृ. 183-87
2. *वा.रा.*, 2.10.10
3. वही, 2.12.63
4. वही, 2.13.21
5. वही, 1.1.22
6. वही, 1.1.23

से भी अलङ्कार द्योतित होता है। स्पष्ट ही **विवासनम्** शब्द किए जा रहे धार्मिक कृत्य–स्थल से हटने व वस्त्र बदलने के अर्थ में और **विवासयामास** अभिषेक की कार्यवाही रोकने की सूचना को प्रसारित करने के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

राम के वनगमन के निर्णय की चर्चा हम आगे करेंगे (द्रष्टव्य, पृष्ठ 75-76, 78-91)।

17

कैकेयी के विवाह के अवसर पर दिए गए वचन 'समय' को जानने वाले

कैकेयी के विवाह के अवसर पर दिए गए वचन अथवा की गयी शर्त के बारे में सभी लोग भले न जानते रहे हों किन्तु दशरथ, वसिष्ठ, सुमन्त्र, कौसल्या और कैकेयी तो जानते ही जानते थे। इनके अलावा यह बात कुछ सेवकों को भी ज्ञात थी।

सेवकों के सन्दर्भ में कौसल्या का एक मार्मिक कथन उल्लेख्य है कि जो कोई मेरी सेवा में लगा रहता या मेरा अनुसरण करता है वह भी कैकेयी के बेटे (भरत) को देखकर चुप हो जाता है, मुझसे बात नहीं करता–

यो हि मां सेवते कश्चिदथवाप्यनुवर्तते।।
कैकेय्या पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाष्यते।।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि वे सेवक यह जानते थे कि भरत भावी राजा हैं और वे अपने भावी राजा के सामने चुप हो जाते थे। यह कारण कौसल्या को भी स्पष्ट था।

सुमन्त्र को इस बात के ज्ञान का दो स्थानों पर सङ्केत मिलता है। श्लोक 2.14.61 में उन्हें 'मन्त्रज्ञ' और 2.15.18 में 'पुराणवित्' कहा जाना महत्वपूर्ण है। 'मन्त्र' का अर्थ ही 'गुप्त' होता है, अतः सुमन्त्र गुप्त

1. *वा.रा.*, 2.20.43

बात को जानते थे। 'पुराणवित्' पुरानी बातों को जानने के सन्दर्भ में है। ये दोनों शब्द '**पूर्वं दत्तवरा**'[1] को स्पष्ट करते हैं जिसकी जानकारी सुमन्त्र को थी किन्तु वे ज्येष्ठ पुत्र के अभिषेक के पक्षधर थे–

यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये।[2]

वसिष्ठ ज्येष्ठ पुत्र के ही अभिषेक के पक्षधर थे। चित्रकूट में राम से इक्ष्वाकुवंश के पूरे इतिहास को उन्होंने प्रस्तुत किया[3] कि सर्वदा ज्येष्ठ पुत्र के ही अभिषेक की परम्परा रही है–

पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठे राजाभिषिच्यते।[4]

इस विवरण में उन्होंने सगर की सौतेली माता के षड्यन्त्र की चर्चा बड़े विस्तार से की और ज्येष्ठ पुत्र के ही राज्याभिषेक होने का वृत्तान्त बताया[5] जो एक तरह से कैकेयी के सन्दर्भ में उपयुक्त उदाहरण था कि राजा ने चाहे कैकेयी के पुत्र के अभिषेक की शर्त मानी थी किन्तु विशेष परिस्थिति में कौसल्या के ज्येष्ठ पुत्र के होते हुए कोई अन्य उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।

वाल्मीकीय रामायण के तीन श्लोक ऐसे हैं जो प्रमाणित करते हैं कि दशरथ ने कैकेयी से विवाह के समय कैकेयी से उत्पन्न पुत्र को अभिषिक्त करने की बात माना था। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर विरोध की सम्भावना का पूर्वानुमान दशरथ को था। तभी तो श्लोक 2.4.24 में वे राम से कहते हैं कि आज तुम्हारे सुहृद् सावधान रहकर सब ओर से तुम्हारी रक्षा करें, क्योंकि इस प्रकार के शुभ कार्यों में बहुत से विघ्न आने की सम्भावना रहती है। यह सम्भावित विघ्न उनकी दृष्टि में भरत और कैकेयी की ओर से ही था। तभी वे अगले ही श्लोक 2.4.25 में राम से कहते हैं कि जबतक भरत इस नगर से बाहर अपने मामा के यहाँ निवास करते हैं

---

1. *वा.रा.*, 1.1.21
2. वही, 2.35.9
3. वही, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 110
4. वही, 2.110.36
5. वही, 2.110.18-25

तभी तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना उचित प्रतीत होता है। साथ ही श्लोक 2.4.26-27 में भरत के हर प्रकार के गुणों से समिन्वित होने के बावजूद विभिन्न कारणों से राग-द्वेषादि से संयुक्त हो सकने की सम्भावना बताते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें अपने भी इरादे को बने रह सकने में सन्देह होता है और कहते हैं कि प्रणियों की बुद्धि चञ्चल होती है अत: जब तक मेरे चित्त में कोई मोह नहीं छा जाता तब तक ही तुम अपना अभिषेक करा लो।[1] दशरथ के ये दोनों ही कथन कैकेयी की ओर सङ्केत करते हैं और उस शर्त के बन्धन (श्लोक 2.14.10 के '**समय**' शब्द) की ओर भी जो कैकेयी से विवाह के अवसर पर माना गया था जिसकी मर्यादा का उल्लङ्घन सम्भव नहीं था। कैकेयी की ओर से आशङ्का का उल्लेख कालिदास ने भी किया है-

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्नस्यतामिति।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा।।[2]

वाल्मीकीय रामायण की माहेश्वरतीर्थ की *तत्त्वदीपिका* व्याख्या एवं शिवसहाय की *शिरोमणि* टीका भी कैकेयी के विवाहार्थ दशरथ के द्वारा दिए गए शुल्क का उल्लेख श्लोक 2.4.25 के सन्दर्भ में करती हैं। टीकाकार माहेश्वरतीर्थ ने इस सन्दर्भ में श्लोक 2.107.3 के राम के कथन का भी उल्लेख किया है और शिवसहाय ने दशरथ के शङ्कापूर्ण मानस को **शङ्कितवान्** शब्द से व्यक्त किया है।

दशरथ ने अपने राजकीय गतिविधियों को रनिवास में जानकारी से छिपा रखा था और जब उन्होंने राम के अभिषेक को सार्वजनिक कर दिया उसके बाद यह सोचते हुए कि 'आज ही राम के अभिषेक की बात प्रसिद्ध की गई है, इसलिए यह समाचार किसी रानी को नहीं मालूम हुआ होगा, ऐसा विचारकर दशरथ ने अपनी प्यारी रानी को यह प्रिय संवाद सुनाने के लिए अन्त:पुर में

---

1. *वा.रा.*, 2.4.20
2. *रघुवंश*, 12.2

प्रवेश किया' (**अद्य रामाभिषेको वै प्रसिद्धो वै जज्ञिवान्।। ... प्रियार्हो प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी।**)।[1] दशरथ के निर्णय की जानकारी रनिवास में पहले-पहल कौसल्या को राम का प्रिय करने वाले सुहृदों ने दी थी-

तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः।।
त्वरिता शीघ्रमागम्य कौसल्यायै निवेदयन्।[2]

जब सभासदों के चले जाने और वामदेव तथा वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों को अभिषेक की तैयारी हेतु कहकर राम को दशरथ ने पहली-बार बुलाकर आचार सम्बन्धी कुछ बातें समझाते हुए अगले दिन आनेवाले पुष्य-नक्षत्र में युवराज-पद ग्रहण करने को कहा था।[3] किन्तु यह अभी अन्तिम निर्णय नहीं था और कौसल्या ने भी इसे वैसा ही मानते हुए अपने पुत्र के लिए राजलक्ष्मी (**श्रियम्**) की याचना हेतु देवतागार में प्रार्थना करने बैठ गई थीं[4] जहाँ सुमित्रा और लक्ष्मण पहले से आ गए थे और सीता भी बुला ली गई थीं। राम को दूसरी-बार बुलाकर दशरथ द्वारा अन्तिम निर्णय एवं निर्देश[5] के बाद राम ने आधिकारिक रूप से अपनी माता को बताया।[6] हर्ष का समाचार सुनने के बाद भी कौसल्या के मन में आगत विघ्न का भय समाया था और उन्होंने राम के मार्ग में विघ्नकर्ताओं के नाश की कामना की थी- **हतास्ते परिपन्थिनः**[7] - तथा राज्यलक्ष्मी से युक्त होकर अपने और सुमित्रा के बन्धु-बान्धवों को आनन्दित करने को कहा था। कौसल्या ने यहाँ कैकेयी का सन्दर्भ नहीं लिया है। स्पष्ट ही कैकेयी की ओर से आ सकने वाले काले-बादल अभी छँटे नहीं थे।

---

1. *वा.रा.*, 2.10.10-11 का गीताप्रेस संस्करण में दिया गया अनुवाद
2. वही, 2.3.46-47
3. वही, 2.3.41
4. वही, 2.4.30
5. वही, 2.4.22 एवं आगे
6. वही, 2.4.35
7. वही, 2.4.39

18

राम के अभिषेक के लिए दशरथ की राजनीति

राम के अभिषेक का निर्णय वस्तुतः एक सोची–समझी रणनीति के साथ ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार की इक्ष्वाकुवंश की स्थापित परम्परा के निर्वाह के लिए किया गया था। इस नीति के तहत दशरथ ने सहज भाव से भरत को ननिहाल जाने को प्रेरित किया।[1] उन्होंने शत्रुघ्न को जाने के लिए नहीं कहा था। शत्रुघ्न को साथ ले चलने के लिए भरत ने सोचा[2] और दोनों केकय देश गए[3] ऐसा वर्णित है। दशरथ ने शत्रुघ्न को रोका भी नहीं। एक प्रश्न यह भी उठाए जाने योग्य है कि शत्रुघ्न भरत के साथ गए भी थे या नहीं क्योंकि भास के *प्रतिमानाटक* में राम के अभिषेक के अवसर पर लक्ष्मण और शत्रुघ्न को मङ्गल–कलश लिए खड़े होने का उल्लेख मिलता है– **शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके**[4]। भरत का मातुल–गृह से अकेले आना *प्रतिमानाटक*, अङ्क 3 में वर्णित भी है। राम ने भी अपना वनवास स्वीकारते हुए कैकेयी से भरत को मामा के यहाँ से बुलाने की बात कही है–

गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः।
भरतं मातुलकुलाद्यैव नृपशासनात्।।[5]

यहाँ शत्रुघ्न का उल्लेख नहीं है। कालिदास ने भी ननिहाल से केवल भरत के वापसी का उल्लेख किया है– **अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम्। मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः।।**[6]

---

1. *वा.रा.*, 1.77.17
2. वही, 1.77.18
3. वही, 1.77.19, 2.1.1, 2.8.29
4. *प्रतिमानाटक*, 1.7
5. *वा.रा.*, 2.19.10
6. *रघुवंश*, 12.12

दशरथ अपने मन्तव्य को किसी को प्रकट नहीं करना चाहते थे। इसीलिए राज्याभिषेक जैसे महत्वपूर्ण आयोजन के अवसर पर उन्होंने अपने किसी सम्बन्धी को नहीं बुलाया– **न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः।**[1] दशरथ ने कहा कि इस समय शीघ्रता है वे लोग बाद में जान जाएँगे– **त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्।**[2] वे राम के अभिषेक को लेकर चिन्तित थे और विघ्न आदि की शङ्काएँ सम्भावित थीं इसी कारण उन्हें दुःस्वप्न और अशुभ लक्षण दिखाई दे रहे थे तथा उन्हें अपने मृत्यु तक की आशङ्का हो रही थी।[3] दशरथ राम का राज्याभिषेक आनन–फानन में कर देना चाह रहे थे– **तत्र पुष्येभिषिञ्चस्य मनस्त्वरयतीव माम्।**[4]

बालकाण्ड के अन्तिम सर्ग में [5] भरत को केकय देश भेजे जाने के बाद अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग के श्लोक 35-36 में दशरथ के मन में राम को युवराज बनाने का विचार आता है। उन्हें राम को युवराज बनाने की साध थी–

महीमहमिमां कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजाम्।[6]

मन्त्रियों से सलाह करके युवराज बनाने का निश्चय कर लिया–

निश्चित्य सचिवैः सार्धं यौवराज्यमन्यत।[7]

फिर सभासदों से कहा (**यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुङ्गवम्**[8]) और सभासदों की हाँमी[9] हुई। अभिषेक की तैयारी शुरू हुई।[10]

---

1. *वा.रा.*, 2.1.48
2. वही, 2.1.84
3. वही, 2.14.18-19
4. वही, 2.4.22
5. वही, 1.77.16-20
6. वही, 2.1.40
7. वही, 2.1.42
8. वही, 2.2.12
9. वही, 2.2.21-22
10. वही, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 3

शीघ्रतापूर्वक राम को बुलाया गया[1] और उन्हें अगले ही दिन युवराज–पद ग्रहण करने हेतु सूचित किया गया।[2] पुरवासियों के राजसभा से जाने के बाद दशरथ ने फिर मन्त्रियों से सलाह–मशविरा करके[3] राम के अभिषेक का अन्तिम निर्णय लिया (**श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः**[4])। राम को पहले एक बार बुलाया जा चुका था किन्तु सचिव–मन्त्रणा के बाद राम को फिर से बुलाने के लिए सूत को भेजा गया।[5] राम को अपने पुनः बुलाए जाने पर शङ्का होती है (**... रामः ... शङ्कान्वितोऽभवत्**[6]) और वे सुमन्त्र से सारी बातें स्पष्ट रूप से बताने को कहते हैं (**यदागमन कृत्यं ते भूयस्तद्ब्रूह्यशेषतः**[7])। दशरथ के पास राम के पहुँचने पर पिता ने समस्त प्रजा की स्वीकृति के उल्लेख के साथ राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की बात बताई–

अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रकः।[8]

दशरथ को विघ्न की आशङ्काएँ थीं (**भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवं विधानि हि**[9]), उनकी अपनी मति के भी बदलने की स्थिति की सम्भावना हो सकती थी–

तद यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव।
तावदेवाभिषिंचस्य चला हि प्राणिनां मतिः।।[10]

---

1. *वा. रा.*, 2.3.22-23
2. वही, 2.3.41
3. वही, 2.4.1
4. वही, 2.4.2
5. वही, 2.4.3
6. वही, 2.4.5
7. वही, 2.4.6
8. वही, 2.4.16
9. वही, 2.4.24
10. वही, 2.4.20

उन्हें दुःस्वप्न एवं अशुभ लक्षण दिखाई दे रहे थे,[1] अतः इन सारी बातों के कारण उनका मन बहुत शीघ्रता करना चाह रहा था (**तत्र पुण्येऽभिषिञ्चस्य मनस्त्वरयतीव माम्**[2]) और वे भरत के अपने मामा के घर पर रहते-रहते ही राम का अभिषेक कर देना चाहते थे -

विप्रोषितश्च भरतोयावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम।।[3]

इस श्लोक पर माहेश्वरतीर्थ की *तत्त्वदीपिका* व्याख्या एवं शिवसहाय प्रणीत *शिरोमणि* टीका भी दशरथ के राजनीतिक सन्दर्भ का सङ्केत करती हैं। स्पष्ट ही दशरथ अपनी राजनीतिक आकांक्षा पूरी करना चाह रहे थे। तुलसीदास ने बड़े ही साफ शब्दों में दशरथ से ही इस बात की स्वीकारोक्ति कराई है-

मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति।[4]

दशरथ की राजनीतिक आकांक्षाओं का विवेचन अन्य अध्येताओं ने भी किया है।[5]

19

दशरथ ने भरत का राज्याभिषेक करना माना

दशरथ द्वारा भरत को केकय देश भेजकर[6] भरत का मामा के यहाँ ही रहते-रहते अर्थात् उनके वापस आने के पहले ही[7] बिना सम्बन्धीजनों को सूचित किए[8] राम के अभिषेक का समारम्भ देखकर

---

1. *वा.रा.*, 2.4.17-19
2. वही, 2.4.22
3. वही, 2.4.25
4. *रामचरितमानस*, अयोध्याकाण्ड, दोहा 31
5. ई. आई. काल, इण्डिया-फोरम्स डॉट कॉम, 5.7.2009
6. *वा.रा.*, 1.77.16-20
7. वही, 2.4.25
8. वही, 2.4.48

(**तस्यामिषेक सम्भारान् दृष्ट्वा**[1]) विवाह के अवसर पर की गई शर्त (**पूर्व दत्त वर**[2]) का उल्लङ्घन होना (भरत के स्थान पर राम के अभिषेक की सामग्रियों की तैयारी) देखकर भार्या कैकेयी ने पहले की गई शर्त के अनुसार कार्यवाही करने की माँग की (... **वरमेनमयाचत**[3]) जिससे कि '**समय**' (की गई शर्त अथवा दिए गए वचन) की मर्यादा का उल्लङ्घन न हो (**समयं मानृतं कार्षो पूर्ववृत्तमनुस्मरन्**[4]; **समयं च ममार्येयं यदि त्वं न करिष्यसि**[5]) और सत्य (**मानृतं** - मा-अनृतं अर्थात् असत्य का निषेध) अर्थात् सही कार्य करें जिसे दशरथ को मानना पड़ा, वे कहते हैं कि भरत के राज्याभिषेक की बात मैं मानता हूँ -

अथ जिज्ञाससे मां त्वं भरतस्य प्रियाप्रियो।
अस्तु यत्तत्त्वया पूर्वव्याहृतं राघवं प्रति।।[6]

वस्तुतः दशरथ द्वारा स्वीकृत शर्त अर्थात् '**समय**' यही था, इसी सत्य-वचन के धर्म से वे बँधे थे-

स सत्यवचनाद् राजा धर्मपाशेन संयतः।[7]

20

मूल कथा का विस्तार

इतिहास की इस मूल कथा को निश्चय ही परवर्ती काल में उपवृंहण एवं विस्तार प्रदान किया गया। किन्तु ऐसा करते एमय कृतिकारों ने कई बातों का ध्यान नहीं दिया और अपनी ओर से कई प्रसङ्ग मनमाने ढङ्ग से जोड़े।

---

1. *वा.रा.*, 2.4.21
2. वही, 1.1.22
3. वही, 1.1.22
4. वही, 2.12.44
5. वही, 2.14.10
6. वही, 2.12.16
7. वही, 1.1.23

21
'दृष्ट्वा' को 'श्रुत्वा' किया गया

मूल कथा में कैकेयी द्वारा राम के अभिषेक की सामग्रियों की तैयारी देखे जाने (... **दृष्ट्वा**[1]) को बाद में सुना जाना (**श्रुत्वा**) कर दिया गया — कैकेयी से दशरथ कहते हैं कि तू राम के अभिषेक की बात को सुनकर सन्तप्त हो उठी है (**तच्छुत्वा शोकसन्तप्ता**[2]...) और केकय देश से भरत के लौटने पर कैकेयी द्वारा कहलवाया गया है — **मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्याभिषेचनम्**।[3] माहेश्वरतीर्थ ने अपनी *तत्त्वदीपिका* व्याख्या में **दृष्ट्वा** को मन्थरा से जानकारी मिलना (**मन्थरावचनाज्ज्ञात्वा**) एवं शिवसहाय प्रणीत *शिरोमणि* टीका मन्थरा के वाक्यों से जानकारी मिलना (**मन्थरा वाक्यादवगम्य**) कह कर समझाने का प्रयास किया है और गोविन्दराज ने अपनी *भूषण* नामक टीका में मन्थरा से देखे हुए जैसी जानकारी मिलना (**मन्थरा मुखेन दर्शन इव ज्ञात्वा**) कह कर समझाने का प्रयास किया है — **जो साफ तौर से गलत** है।

इस '**श्रुत्वा**' को सही ठहराने के लिए कैकेयी की सेविका मन्थरा का परिचयात्मक विवरण देते हुए राम के अभिषेक के एक दिन पूर्व उसके स्वेच्छया कैकेयी के भवन के छत पर जाने[4] और राम के भवन के छत पर कौसल्या की प्रसन्नचित्त धाय से अगले दिन राम के होने वाले अभिषेक (**श्वः पुष्येण**[5]...) की जानकारी होने का वर्णन जोड़ा गया।

---

1. *वा.रा.*, 1.1.21
2. वही, 2.12.18
3. वही, 2.72.49
4. वही, 2.7.1
5. वही, 2.7.11

22

कैकेयी की दुष्टभावता का रोपण

इस प्रकार मन्थरा को बीच में लाकर नई कथा का सूत्रपात किया गया और कैकेयी को उकसाकर देवासुर–सङ्ग्राम में प्राप्त दो वरों, जिन्हें कैकेयी भूल चुकी थी, का उसे याद दिलाकर कैकेयी के अकलुषित मन को दूषित भाव से पूर्ण कराया गया।[1] कथा में यह तोड़–मरोड़ निश्चित ही उस समय किया गया जब बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के नारद द्वारा उल्लिखित रामचरित के घटनाक्रमों में परिवर्तन करके तीसरे सर्ग में पुनः नया घटनाक्रम प्रस्तुत किया गया। इस तीसरे सर्ग के श्लोक 12 में कैकेयी के कृत्य को दुष्टभाव का बोधक कहा गया – **तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम्**। दुष्टभावता का शब्दविन्यास श्लोक 2.13.24

विशुद्धभावस्य हि दुष्टभावा ताम्रेक्षणस्याश्रुकलस्य राज्ञः।
श्रुत्वा विचित्रं करुणं विलापं भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम्।।

के **दुष्टभावा** से समानता लिए हुए है। यह 13वाँ सर्ग दशरथ के विलाप और अनुनय–विनय का है जो पूर्व के 12वें सर्ग का शेष–कथन जैसा है अतः इस सर्ग की रचना के समय कैकेयी की दुष्टभावता का विशेष समायोजन किया गया जान पड़ता है। कैकेयी की दुष्टभावना के वर्णन के लिए तरह–तरह के अवसर खोजे गए। यहाँ तक कि उसकी माता तक के स्वभाव को उद्धृत करके कोसा गया (**अभिजातं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च ...**[2])।

इतना ही नहीं, कैकेयी की दुष्टभावता को नाना के घर गए हुए भरत के द्वारा भी कहलाया गया है, उन्हें अयोध्या लाने के लिए गए हुए दूतों से माता का हाल जानने के लिए भरत ने इस प्रकार कहा है –

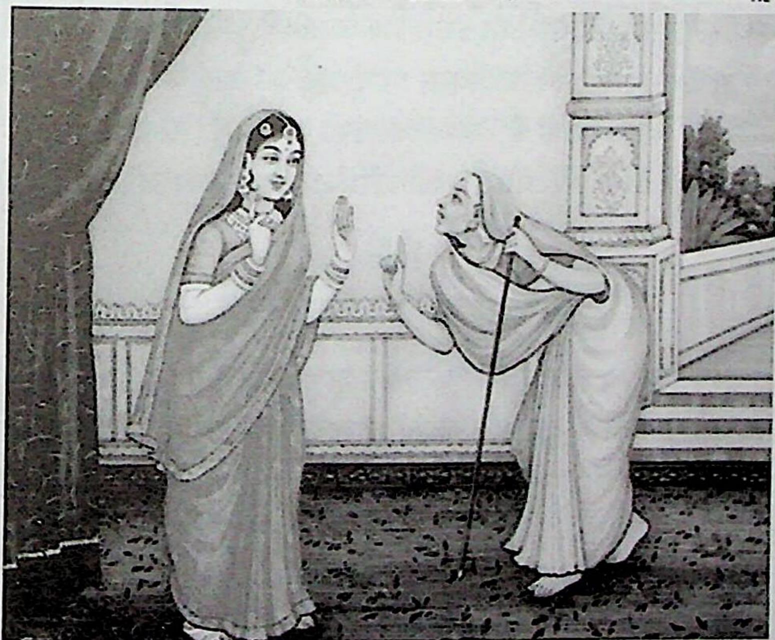
आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञ मानिनी।
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह।।[3]

---

1. *वा.रा.*, 2.9.6
2. वही, 2.25.15-22
3. वही, 2.70.10

कैकेयी और मन्थरा







दशरथ और कैकेयी (बोरोबुदुर)

हालाँकि नारद के कथन में सत्य के प्रतिपादन का भाव है–

तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी।।[1]

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।[2]

सत्य के प्रतिपालक दशरथ से विवाह के अवसर पर दिए गए वचन के पालन का यह आग्रह था कैकेयी का। *महाभारत* में राम के अभिषेक की बात मन्थरा सीधे दशरथ के मुख से सुनती है जब वे ब्राह्मणों को तत्सम्बन्धी तैयारी करने का निर्देश दे रहे थे (**इति तद् राजवचनं प्रतिश्रुत्य मन्थरा।**[3])। *महाभारत* की रामकथा में देवासुर–सङ्ग्राम और उसमें प्राप्त कैकेयी के वरों का भी सङ्केत नहीं है। दशरथ से देवासुर–सङ्ग्राम के अवसर पर दो वरों की प्राप्ति की कथा *ब्रह्म पुराण* में कही गई बताई जाती है, सम्भवतः इसी पुराण का सन्दर्भ रामायण के टीकाकार माहेश्वरतीर्थ ने '**पौराणिकी प्रसिद्धिः**' के माध्यम से किया है।

23

मन्थरा छत पर कब गयी

नारद द्वारा प्रयुक्त '**दृष्ट्वा**'[4] के स्थान पर '**श्रुत्वा**'[5] का प्रयोग करके दासी मन्थरा को कैकेयी में **दुष्टभाव जागरित करने** के माध्यम के रूप में प्रस्तुत

---

1. वही, 1.1.21
2. वही, 1.1.22
3. *महाभारत*, वनपर्व, 277.16
4. *वा.रा.*, 1.1.21
5. वही, 2.72.49

किया गया।[1] नारद द्वारा कथित घटना का समय अभिषेक के अवसर पर है[2] जिसका अनुमोदन भास[3] एवं कालिदास[4] ने भी किया है, परन्तु मन्थरा को अभिषेक के एक दिन पूर्व स्वेच्छा से अचानक छत पर जाने से राम के अभिषेक की जानकारी[5] की बात कपोल-कल्पित है।

अभिषेक के एक दिन पहले का महोत्सव जैसा जो विशिष्ट वर्णन *वाल्मीकीय रामायण* में किया गया है वह पूर्वाह्न की प्रात:कालीन स्थितयों का जान पड़ता है, विशेषत: लोगों के चन्दनयुक्त उबटन लगाकर सिर के ऊपर से स्नान किए हुए उल्लेख के कारण –

सिक्तां चन्दनतोयैश्च शिर:स्नातजनैर्युताम्।[6]

और, जिस दृश्य का वर्णन मन्थरा ने किया है वह दृश्य तथा नगर की तैयारी तभी सम्भव है जब अभिषेक के दिन से कम-से-कम दो दिन पहले अभिषेक की बात प्रचारित हो चुकी हो, तभी राम के अभिषेक के एक दिन पहले वर्णित महोत्सवपूर्ण माहौल मन्थरा देख सकती थी और तभी कौसल्या की धाय भी उत्तम वस्त्रों में प्रसन्नचित्त मिली। चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा ने मन्थरा का छत पर जाना राम के युवराज बनाए जाने की घोषणा के दिन की रात के समय माना है।[7] ध्यान देने की बात है कि दशरथ ने अपने मन में राम के अभिषेक का निर्णय तो ले लिया था[8] किन्तु उसे प्रगट सबसे पहले अपने मन्त्रियों से किया[9]

---

1. *वा.रा.*, 2.7-9
2. वही, 1.1.21
3. *प्रतिमानाटक*, 1.7
4. *रघुवंश*, 12.4
5. *वा.रा.*, 2.7.1-11
6. वही, 2.7.3
7. *वाल्मीकीय रामायण*, प्रकाशक – रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1927, 2.7.1 के अनुवाद में किया गया अनुमान)
8. *वा.रा.*, 2.1.35-40
9. वही, 2.1.42

और समय आने पर राज्याभिषेक की तैयारी के लिए आज्ञा भी दी।[1] वह समय राजसभा से मन्त्रणा के बाद का था जिसमें कल पुष्य-नक्षत्र में राज्याभिषेक का निर्णय हुआ।[2] सभा की परिसमाप्ति के बाद गुरु वसिष्ठ एवं वामदेव से अभिषेक की सामग्री एकत्र कराने के लिए कहा गया।[3] राजभवन और नगर की सजावट का आदेश किया गया।[4] अगले दिन (अर्थात् अभिषेक के दिन) के कार्यों को भी समझाया गया जिसमें ब्राह्मणों का सत्कार, स्वस्तिवाचन, नगर में पताकाएँ, मार्गों पर छिड़काव, सुन्दर वेश-भूषा में स्त्री-पुरुष, देवस्थानों के लिए व्यवस्था, सैनिकों की तैनाती आदि के निर्देश किए गए (**सूर्योऽयुदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम्।**[5]....)। राम को बुलाकर प्राथमिक सूचना की गई।[6] मन्त्रियों से पुनः सलाह किया गया।[7] राम को दुबारा बुलाया गया और आधिकारिक रूप से सूचना दी गई।[8] इतने कार्य-कलापों के बाद ही अयोध्या के हर्षोत्फुल्ल वातावरण का वर्णन किया गया है।[9] यह समय लगभग सायंकाल का था क्योंकि लोग राज्याभिषेक देखने की इच्छा से शीघ्र सूर्योदय होने की कामना कर रहे थे (**रामाभिषेकमाकांक्षन्नाकांक्षन्नुदयं रवेः।**[10])। इसी समय दशरथ अन्तःपुर में गए।[11] नगर की मुख्य सजावट अभिषेक के दिन ही की गयी वर्णित है (**प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभयितुं पुरीम्।।**[12])।

---

1. *वा.रा.*, 2.1.45
2. वही, 2.2.12
3. वही, 2.3.4
4. वही, 2.3.13
5. वही, 2.3.14-20
6. वही, 2.3.41
7. वही, 2.4.1
8. वही, 2.4.22
9. वही, 2.5.14 एवं आगे
10. वही, 2.5.19
11. वही, 2.5.25
12. वही, 2.6.10 एवं आगे

इतने विवरणों के बाद मन्थरा के छत पर जाने का विवरण सर्ग सात में आता है और वह यह सब कुछ एक दिन पहले ही देख लेती है जिसका कोई औचित्य नहीं बनता। और यदि वह एक दिन पहले के सायं के हर्षोत्फुल्ल वातावरण को देखती है तो उसका वर्णन बेमेल है साथ ही उसे कैकेयी को उकसाने का तीन सर्गों (सर्ग सात-आठ-नौ) का समय कहाँ मिलेगा क्योंकि इसी समय दशरथ अन्तःपुर में जाते हैं।[1] सन्ध्या-काल का यह समय तारागणों के बीच चन्द्रमा के उदय के समान दशरथ का सुन्दरियों से भरे हुए अन्तःपुर में प्रवेश की आलङ्कारिक भाषा से स्पष्ट रूप से इङ्गित है–

तदग्र्यरूपं प्रमदाजनाकुलं महेन्द्रवेश्मप्रतिमं निवेशनम्।
व्यदीपयंश्चारु विवेश पार्थिवः शशीव तारागण सङ्कुलं नभः।।[2]

दशरथ का रूठी कैकेयी को मनाने, कैकेयी द्वारा दो वरों की भूमिका और उन्हें माँगने तथा राम के वनगमन के वर को छोड़ने के लिए दशरथ के समझाने-बुझाने के बावजूद कैकेयी के न मानने के 4 सर्गों में 195 श्लोकों में निबद्ध वर्णन तक सूर्य अस्ताचल पहुँच गए और रात आरम्भ हो गई थी–

अस्तमभ्यागमत् सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत।[3]

इन परिप्रेक्ष्यों में इस बात की कल्पना कर पाना कठिन है कि मन्थरा एकाएक महल के छत पर कब गई होगी अभिषेक के एक दिन पहले पूर्वाह्न प्रातःकाल या रात में। वस्तुतः यह अभिषेक के समय घटी हुई घटना को अभिषेक के एक दिन पूर्व दशरथ के महल में आने के पहले अर्थात् अपराह्न से लेकर रात्रि में प्रातःकाल के पूर्व तक घटाए जाने का प्रयास (प्री-शेड्यूलिंग) है। यह प्रयास प्राप्त वर्णनों के प्रमाणों के आधार पर असफल है।

---

1. *वा.रा.*, 2.5.25, 2.10.9-11
2. वही, 2.5.26
3. वही, 2.13.15

24

कल्पित कोप-भवन (क्रोधागार) राज-प्रासाद सम्बन्धी शिल्पशास्त्रों में नहीं

मन्थरा ने कैकेयी को कोप-भवन (क्रोधागार) में जाने की सलाह दी-

क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते।
शेष्वानन्तर्हितायांत्वं भूमौ मलिनवासिनी।।[1]

उस सलाह को मानते हुए कैकेयी कोप-भवन (क्रोधागार) में गई-

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता।।[2]

जहाँ उसने अपने आभूषणादि उतार कर जमीन पर फेंक दिए और स्वयं भूमि पर लेट गई- **अनेकशतसाहस्रं मुक्ताहारं वरांगना। अवमुंच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च।।; ..... संविवेशावला भूमौ निवेश्य ..... चित्राणिमाल्यानिदिव्याभरणानिच; ..... अपविद्धानि ..... भूमिंप्रपेदिरे ..... मूल्याभरणानिच; क्रोधागारेनिपतितासा ....[3]**

दशरथ जब अपने शयनागार में पहुँचे तो कैकेयी वहाँ नहीं थी, उसके बारे में पूछने पर प्रतिहारी सेविका से ज्ञान हुआ कि कैकेयी तो कोप-भवन (क्रोधागार) में है-

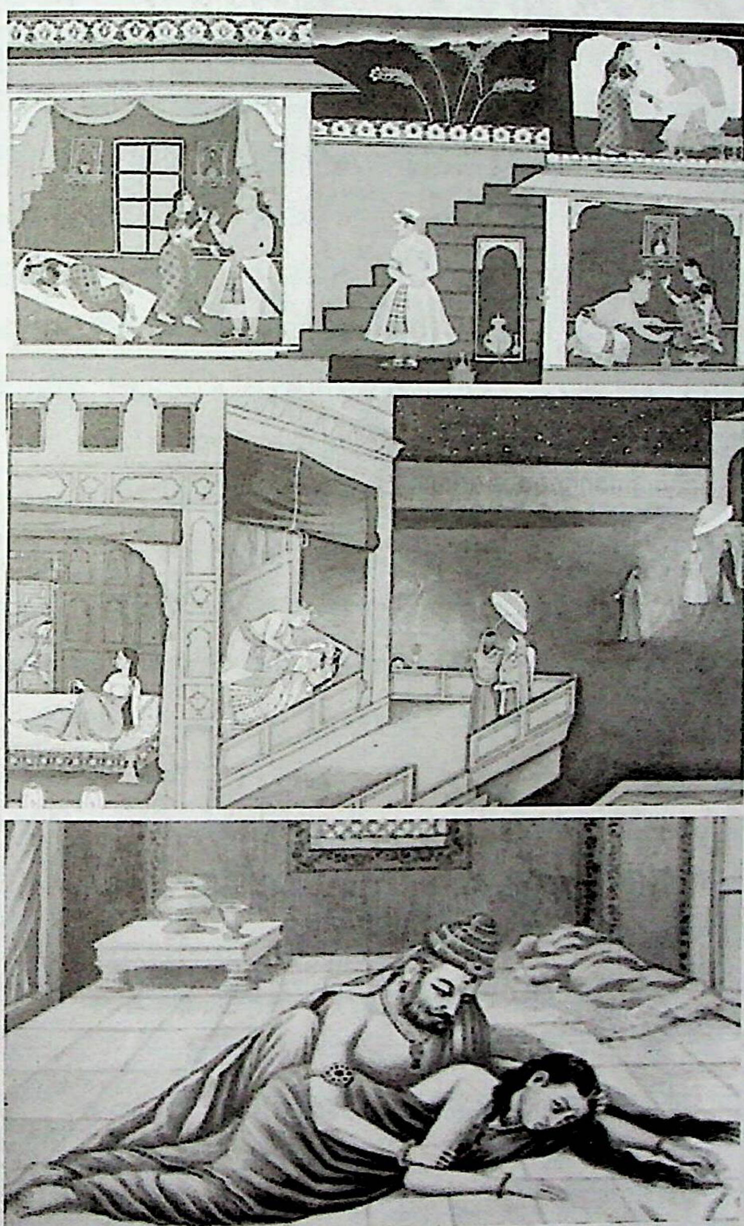
देव देवी भृशं क्रुद्धा क्रोधागारमभिद्रुता।
प्रतिहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः।।[4]

और दशरथ वहाँ गए। आगे की घटनाएँ इसी कोप-भवन (क्रोधागार) में घटती हैं। 'क्रोधागार' ऋषि वाल्मीकि का शब्द है और 'कोप-भवन' गोस्वामी तुलसीदास का।

---

1. *वा.रा.*, 2.9.22
2. वही, 2.9.55
3. वही, 2.9.56; 2.10.6,7,8
4. वही, 2.10.21

कोप भवन में कैकेयी



(विभिन्न चित्रों में अङ्कन)

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या राज–प्रासाद की वास्तु–रचना में क्रोधागार जैसे कक्ष के निर्माण का कोई सन्दर्भ शिल्पशास्त्रों में है! जहाँ तक मेरी जानकारी है ऐसा स्पष्ट सन्दर्भ कहीं नहीं है। *शुक्रनीतिसार* राजप्रासाद के दक्षिण भाग में अन्यान्य संरचनाओं — शयनागार, विहार, सुरापानगृह, रोदनार्थ गृह, धान्य गृह, घरट्ट (कूटने–पीसने) गृह, दास–दासी गृह, उत्सर्ग (मल–मूत्र त्याग) गृह — के उल्लेख में क्रम में तीसरे स्थान पर 'रोदन–गृह' उल्लिखित करता है (**निद्रार्थं च विहारार्थं पानार्थं रोदनार्थकम्। ... उत्सर्गार्थं गृहान्कुर्याद् दक्षिणस्यानुक्रमात्।।**[1])। यह ग्रन्थ परवर्ती काल की रचना मानी जाती है जब बारूद का प्रयोग भारत में होने लगा था। ऐसे ही प्रसङ्ग *विश्वकर्मप्रकाश* (2.97), *वसिष्ठसंहिता* (39.168) और *पूर्वकालामृत* (6.28) में भी दिए गए हैं।

महाभारत में कैकेयी किसी क्रोधागार में नहीं जाती, मन्थरा से जानकारी मिलने के बाद कैकेयी समस्त आभरणों से भूषित हो कर एकान्त में दशरथ के पास जाती है और प्रेम जताती हुई–सी मधुर वाणी में अपनी बात कहती है–

सातद्वचनमाज्ञायसर्वाभरणभूषिता ।
देवी विलग्नमध्येव विभ्रती रूपमुत्तमम्।।
विविक्ते पतिमासाद्य हान्तीव सुचिस्मिता।
प्रणयं व्यंजयन्तीव मधुरं वाक्यमब्रवीत्।।[2]

यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि *महाभारत* और *वाल्मीकीय रामायण* में विवरण भेद है बल्कि बात यह है कि यह प्रसङ्ग ही अविश्वसनीय है।

---

1. *शुक्रनीतिसार,* 1.224-225
2. *महाभारत,* वनपर्व, 277.19-20

भास ने कोप-भवन का कोई प्रसङ्ग नहीं दिया है बल्कि कैकेयी के सन्देशवाहक के रूप में मन्थरा को दशरथ के पास भिजवाया है जहाँ वे अभिषेक-यज्ञ-स्थल पर राम के साथ बैठे थे-

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रं स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा।।[1]

कालिदास ने भी इस प्रसङ्ग में मन्थरा का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है।[2]

25

देवासुर-सङ्ग्राम के कल्पित दो वर

नारद के '**पूर्वं दत्तवरा**' का नया स्पष्टीकरण देवासुर-सङ्ग्राम में दशरथ की जान बचाने के उपलक्ष में दिए गए वर के रूप में प्रस्तुत किया गया। नारद के उल्लिखित एकवचन के वर 'भरत का अभिषेक और फलस्वरूप राम का विवासन (पद-त्याग)' को न समझने के कारण 'भरत का अभिषेक' और 'राम का विवासन' को अलग-अलग मान कर — देवासुर-सङ्ग्राम में दशरथ की युद्धस्थल में जान बचाने — शत्रु द्वारा हतप्राय स्थिति में पूरी रात जगकर अनेक प्रकार के प्रयत्न करके जीवन की रक्षा करने — की बात कही गई[3] इस कथा को राम को बताते समय कथा का और भी संक्षेप रूप कैकेयी ने कहा है — देवासुर-सङ्ग्राम में तुम्हारे पिता शत्रुओं के बाणों से बिंध गए थे, उस महासमर में मैंने इनकी रक्षा की थी[4] और उस समय 'दो वरों' (**द्वौ वरौ**)

---

1. *प्रतिमानाटक*, 1.7
2. द्रष्टव्य, *रघुवंश*, सर्ग 11-12
3. *वा.रा.*, 2.11.18-19, दशरथ के जीवन की रक्षा की बात कैकेयी ने 2.12.41 में भी की है
4. वही, 2.18.32

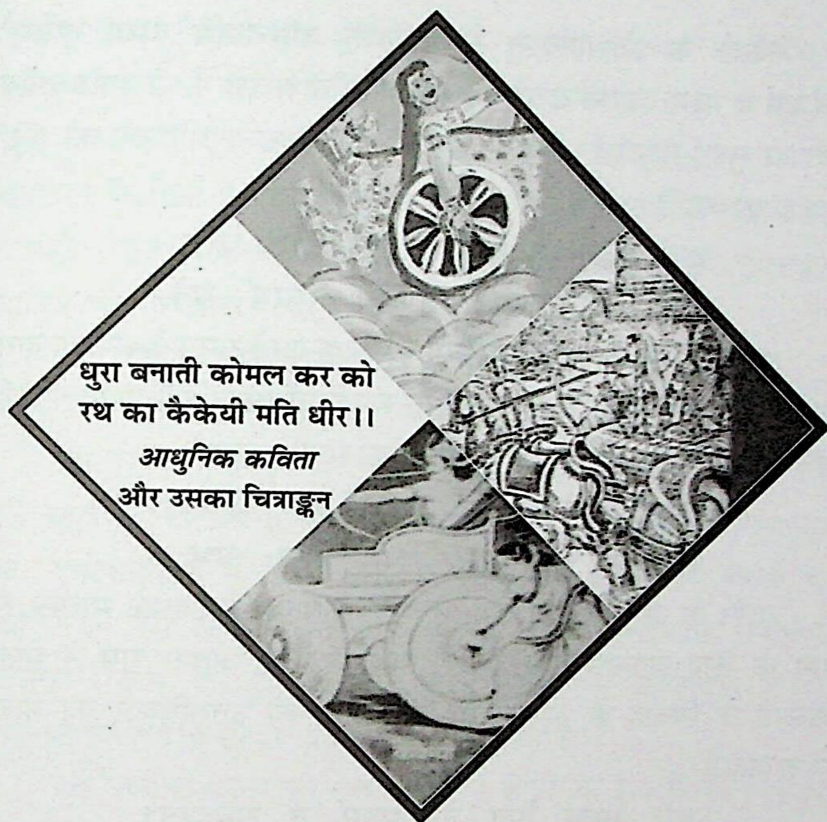


उड़ीसा के ताड़पत्र पर अङ्कित मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग

के दिए जाने की स्थापना की गई है (**दत्तौ ते द्वौ वरौ**[1], **अयाचत द्वौ वरौ**[2], **प्रददौ वरौ**[3], **तौ दत्तौ च वरौ**[4])। कैकेयी के इस कथन में शत्रुपक्ष द्वारा हतप्राय स्थिति में सुश्रूषा करके प्राण की रक्षा में एक ही घटना विशेष दृष्टिगत होती है, यहाँ दो वर के लिए उपयुक्त कारण नहीं दिखता। देवासुर-सङ्ग्राम के कैकेयी के इस विवरण से मन्थरा का विवरण कुछ भिन्न है। घायल हुए चेतनाहीन दशरथ को कैकेयी द्वारा सारथी के रूप में रणभूमि से दूर हटा कर रक्षा करने और वहाँ भी शत्रुओं द्वारा पुनः घायल करने पर अन्यत्र ले जा कर रक्षा करने की बात मन्थरा द्वारा कही गई है।[5] कैकेयी और मन्थरा के कथनों में एक से अधिक बिन्दुओं का अन्तर है। देवासुर-सङ्ग्राम की बात कैकेयी ने ही मन्थरा को बताया था और स्वयं भूल गई थी, मन्थरा द्वारा याद दिलाए जाने पर कैकेयी

---

1. *वा.रा.*, 2.9.17
2. वही, 2.107.5
3. वही, 2.9.15-16
4. वही, 2.11.18-19
5. वही, 2.11.21



ने इसे अपना अस्त्र बनाया। मन्थरा ने स्वभावगत अपने उद्देश्य के अनुसार नमक-मिर्च लगाकर ही सुनाया होगा। इन दोनों व्यक्तियों के कथनों में से किसी एक के कथन को गौरव देने की बात उठाई जाए तो निश्चित ही कैकेयी के कथन को ही गुरुता मिलेगी। कैकेयी के देवासुर-युद्ध के विवरण के अनुसार घटना एक ही थी[1] तो वर दो कैसे हुए। कैकेयी अगले एक श्लोक के बाद ही एकवचनीय 'वर' का उल्लेख करती है -

तत् प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद् दास्यसि मे वरम्।[2]

---

1. *वा.रा.*, 2.11.2
2. वही, 2.11.24

कैकेयी के **अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तमिच्छामि त्वया कृतम्**[1] एवं **एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे**[2] जैसे वचनों में भी एकवचनीय स्वर ही सुनाई पड़ता है। दशरथ ने भी 'भरत को राज्य और राम को वन' एक ही वर कहा है–

कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवं विधं वरम्।।
राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने।[3]

राम द्वारा भरत से देवासुर–सङ्ग्राम का जिक्र करते समय कैकेयी के द्वारा युद्ध में जान बचाने को अलग घटना के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है बल्कि सुश्रूषा करने से प्रसन्न होकर वर देने का सन्दर्भ आया है–

देवासुरे च सङ्ग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः।।[4]

वर्णन के अनुसार यहाँ एक ही वर का सन्दर्भ है जिसके माध्यम से राम के लिए वनवास प्राप्त हुआ।[5] पहले वर का आधार राम ने माता कैकेयी के विवाह के अवसर पर उनके पुत्र को उत्तराधिकार का माना जाना कहा है–

पुरा भ्राता पितु नः मातरं ते समुद्वहन।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमुत्तमम्।।[6]

इन दो घटनाओं को मिलाकर दो वरों की बात राम से कहलाया गया हैं।[7] देवासुर–सङ्ग्राम का एक ही वर कहा गया है। यहाँ यह सारी विचारणा

---

1. *वा.रा.*, 2.11.2
2. वही, 2.11.28
3. वही, 2.12.58-59
4. वही, 2.107.4
5. वही, 2.107.6
6. वही, 2.107.3
7. वही, 2.107.5-7

इसलिए प्रस्तुत है कि वस्तुतः क्षेपककार कथा-भूमि को सँभाल नहीं पा रहा था और व्यतिक्रम पर व्यतिक्रम करता गया है। यह सारी कथा गढ़ने के बाद भी **एक वर** वाली मूल बात कहीं न कहीं झलक जाती है। राम ने अपने वनगमन हेतु पिता से आज्ञा माँगते समय कहा कि, हे! वरदायक नरेश आपने देवासुर-सङ्ग्राम में कैकेयी को जो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्णरूप से दीजिए और सत्यवादी बनिए-

यस्तु युध्ये वरो दत्तः कैकेय्ये वरद त्वया।।
दीयते निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव।[1]

इस कथन में संस्कृत वर शब्द एकवचन में है और हिन्दी अनुवाद में भी बहुवचन का प्रयोग नहीं है। मजे की बात यह भी है कि *महाभारत* के 'रामोपाख्यान' में देवासुर-सङ्ग्राम एवं उसके फलस्वरूप किसी वर का सन्दर्भ नहीं आया है और साथ ही यह भी कि दशरथ के सन्दर्भ में देवासुर-सङ्ग्राम का उल्लेख करने वाले भास और कालिदास ने भी तत्-फलस्वरूप किसी वर-प्राप्ति की बात नहीं कही है।

जब एक बार ग्रन्थ की मूल प्रकृति में क्षेपक के रूप में परिवर्तन आ गया तो प्रदूषकों को अवसर मिला अपनी-अपनी कल्पनाओं के लिए। *वाल्मीकीय रामायण* के उत्तर-भारतीय एवं दक्षिण-भारतीय पाठों में देवासुर-सङ्ग्राम का विस्तृत विवरण एक जैसा नहीं है। माहेश्वरतीर्थ ने अपनी *तत्त्वदीपिका* टीका में **पौराणिकी प्रसिद्धिः** कहते हुए कैकेयी को धवलाङ्ग मुनि से माया-युद्ध में प्राप्त कौशल का उल्लेख किया है-

इन्द्रसहायार्थे प्रवृत्तदशरथ युद्धकाले दशरथे परप्रयुक्तामासुरीं मायां धवलाङ्गाख्यमुनिदत्त विद्यया वारयन्त्यै कैकेय्यै तुष्टेन दशरथेन दत्तं वरद्वयमिति पौराणिकी प्रसिद्धिः।

---

1. *वा.रा.*, 2.9.15-16

सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने देवासुर-सङ्ग्राम का पौराणिक सन्दर्भ *ब्रह्म पुराण*[1] दिया है।[2] लेकिन धवलाङ्ग मुनि का सन्दर्भ पौराणिक-विश्वकोश[3] में खोजने पर नहीं मिला। जङ्ग वेङ्कट सुब्बरयदु के तेलुगु *द्विपद रामायण* में भी कैकेयी की माया-युद्ध में प्रवीणता का उल्लेख है। रथ-सञ्चालन, दशरथ की युद्ध में रक्षा, माया-युद्ध में अपनी प्रवीणता दिखाना, घायल अवस्था में युद्ध-क्षेत्र से दूर ले जाना, घावों पर औषधि प्रयोग एवं रात भर जाग कर सुश्रूषा करना और कथान्तर यहाँ तक गया कि कैकेयी ने अपने दाहिने हाथ अथवा हाथ के अँगूठे को रथ की धुरी में लगा कर चक्के को विलग होने से बचाया था। भग्नाक्ष का सन्दर्भ *भावार्थ रामायण* (1.1) तथा कई अन्य परवर्ती ग्रन्थों में भी है। वेट्टम मणि के पौराणिक-विश्वकोश[4] में यद्यपि इस घटना का उल्लेख है किन्तु सन्दर्भ के रूप में *वाल्मीकीय रामायण* और *कम्ब रामायण* का उल्लेख किया गया है। इन दोनों सन्दर्भों में कैकेयी द्वारा रथ-चक्र की धुरी में कील के स्थान पर अँगूठे को लगाने का सन्दर्भ मूल श्लोकों[5] में नहीं है। *ब्रह्म पुराण* में चक्र को भग्न होते देख हाथ लगाने का सन्दर्भ है; **भग्नमक्षं समालक्ष्य चक्रे हस्तं तदा स्वकम्।**[6] रथ की धुरी में कील के स्थान पर उँगली अथवा धुरे की जगह भुजा लगाने की वास्तविक स्थितियाँ भी सम्भाव्य नहीं हैं।

---

1. *प्राचीन भारतीय चरित्रकोश,* उपरिउल्लिखित, पृ. 167, *ब्रह्म पुराण,* 123.26
2. वही। *ब्रह्म पुराण* का सन्दर्भ कुछ अन्य अध्येताओं ने भी दिया है, 'ब्रह्मपुराण की रामकथा', *कल्याण,* रामभक्ति अङ्क, 1994 ई., पृ. 233-234
3. *पुराणिक एन्साइक्लोपीडया,* वेट्टम मणि, दिल्ली, 1975
4. वही, पृ. 364 एवं 204
5. *वा.रा.,* 2.9.11-18, 2.11.18-19, 2.18.32; *कम्ब रामायण,* मूल तमिल से अनूदित, पटना, 1962, भाग 1, अयोध्याकाण्ड, अध्याय 2, मन्थरा-षड्यन्त्र पटल, पृ. 186-187
6. *ब्रह्म पुराण,* खेमराज श्रीकृष्णदास संस्करण, पुनर्प्रकाशित दिल्ली, 1985, गौतमी खण्ड, 53.26

ब्रह्म पुराण में देवासुर-सङ्ग्राम में कैकेयी के सहयोग के फलस्वरूप दशरथ द्वारा कैकेयी को दिए गए वरों की संख्या **तीन** कही गई है-

अक्षवन्मुनिशार्दूल महदद्भुतम्।
रथेन रथिनां श्रेष्ठस्तया दत्तकरेण प्रियाम्।।
जितवान्दैत्यदनुजान्देवैः प्राप्य वरान्बहून्।
ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्यां पुनरभ्यगात्।
स तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रिया।
कैकेय्याः कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः।।
ततस्तस्यै वरान्प्रादान्त्रींस्तु नारद सा अपि।
अनुमान्य नृपप्रोक्तं कैकेयीवाक्यमब्रवीत्।।
त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी।।[1]

यह बात भी विश्वसनीय नहीं लगती क्योंकि राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी द्वारा दशरथ से किए गए आग्रह में उपर्युल्लिखित निक्षिप्त किए गए तीन वरों का कोई सन्दर्भ नहीं है और कैकेयी द्वारा राम को वनवास एवं भरत को राज्य (अर्थात् केवल दो वर) के लिए कहा जाना और उनका **दशरथ द्वारा न दिया जाना**-

ततो बहुतिये कालं राज्यं तस्य प्रयच्छति।।
नृपतो सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि।
मन्थरात्मक दुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला।।
कैकेयी विप्रमातस्ये वनप्रव्राजनं तथा।
भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान्।।[2]

अपने आप में यह सिद्ध करता है कि ऊपर उल्लिखित टीकाकारों द्वारा इस पौराणिक सन्दर्भ के सङ्केत से मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग में देवासुर-सङ्ग्राम और दो वरों से राम को वनवास एवं भरत को राज्य की प्रामाणिकता पूर्णतः

1. *ब्रह्म पुराण*, 53.29-31
2. वही, 53.105-107

असिद्ध है। इन्द्र और शम्बासुर के बीच के देवासुर-सङ्ग्राम में दशरथ के सहयोग को सन्त एकनाथ के मराठी *भावार्थ रामायण* में इन्द्र और दशरथ का ही युद्ध बताया गया। स्वयम्भु के जैन *पउम चरिउ* में युद्ध का स्थान और कारण दोनों ही बदल कर कैकेयी के विवाह के बाद राह में अन्य राजाओं से दशरथ का युद्ध कहा गया जिसमें कैकेयी को एक वर मिला। संघदासगणी के *वसुदेवहिण्डी* में दशरथ के एक सीमान्त राजा द्वारा पराजित होने और बन्दी बनाए जाने पर कैकेयी द्वारा रण-कौशल से मुक्त कराने की बात कही गई है, इस ग्रन्थ में कैकेयी के रति-चातुर्य और रण-कौशल को वरों की प्राप्ति का कारण कहा गया है। वङ्गीय *कृत्तिवास* एवं तमिल *कम्ब रामायण* जैसे स्थानीय विभिन्न लोक भाषाओं की रामकथाओं में भी यत्किञ्चित् कथा-वैभिन्य आया। एक भोजपुरी गीत में दशरथ द्वारा बाँस काटते समय खैंच गड़ने का कैकेयी द्वारा किए गए उपचार के उपलक्ष्य में वर प्रदान हुए तो कहीं बिच्छू के डङ्क मारने से काट का उपचार करने के उपलक्ष्य में। कामिल बुल्के ने भी पैर से काँटा निकालने का उल्लेख सन्दर्भित किया है।[1] स्नेह ठाकुर के *कैकेयी* पर लिखे गए उपन्यास के प्राक्कथन एवं कथा में देवासुर-सङ्ग्राम में रावण के व्यङ्ग्यात्मक अट्टहास के उत्तर में कैकेयी कहती है कि मेरा राम तुम्हें मारेगा[2] किन्तु कोई मूल सन्दर्भ नहीं है, मैंने पत्र लिख कर पूछा तो उन्होंने *कल्याण* के नारी अङ्क में ऐसा सन्दर्भ है यह सङ्केतित किया किन्तु उस अङ्क के लेख 'माता कैकेयी' में यह सन्दर्भ नहीं मिला।[3] साहित्य रचना की दृष्टि से *ब्रह्म पुराण* का सन्दर्भ इनमें सबसे पुराना है जिसे तिथि की प्राचीनता की दृष्टि से अधिक से अधिक लगभग 5वीं शती ई. में रचा गया माना जाता है, किन्तु इस पुराण के गौतमी माहात्म्य खण्ड को काफी

---

1. विभिन्न सन्दर्भों के लिए द्रष्टव्य, कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, पृ. 402 टिप्पणी 1 एवं सत्य चैतन्य, बोलोजी डॉट कॉम, 'कैकेयी : राम के माँगीला बनवास'
2. *कैकेयी : चेतना-शिखा,* नई दिल्ली, 2012, पृ. 30, 40, 76
3. *कल्याण,* नारी अङ्क, 1948, पृ. 422-425

बाद की रचना कहा जाता है। स्पष्ट ही *वाल्मीकीय रामायण* में इस कथा का समावेश 5वीं शती के काफी बाद किया गया होगा।

26
कुछ और प्रश्न

यहाँ ध्यान देने की एक बात यह है कि यदि 'विवासन' का 'वनवास' अर्थ ग्रहण किया जाय तो यह वन दण्डकारण्य ही हो[1], वेश जटा एवं अजिन-चीरधारी[2] अथवा काषायपरिधान[3] तपस्वी[4] का हो और वनवास की अवधि 14 वर्ष हो[5] ये तीन और शर्तें किन वरों के परिणाम हैं, यह विवेचनीय है। इनका भी उल्लेख एकरूपता से नहीं किया गया है कहीं एक का तो कहीं दो या तीनों का।

27
वनवास की 14 वर्ष की अवधि का आधार क्या?

राम के विवास एवं अयोध्या से दूर भेजे जाने की सलाह मन्थरा ने दी (**अतोहि सञ्चिन्त्य राज्यमात्मजे परस्य चैवाद्य विवासकारणम्।**[6]) और कैकेयी को दशरथ से वर माँगने के लिए कहते समय वनवास के 14 वर्ष की अवधि बताया है- (**प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश ..., ... चतुर्दश हि वर्षाणि रामेप्रव्राजिते वनं।, रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च। चतुर्दशहि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वने ...**)[7] जिसके साथ कैकेयी ने

---

1. *वा.रा.*, 2.11.26, 2.18.33, 37
2. वही, 2.11.26-27, 2.18.37
3. वही, 2.12.98
4. वही, 2.11.26-27
5. वही, 2.9.20, 2.11.26
6. वही, 2.8.39
7. वही, 2.9.20, 21, 30, 31

दण्डकारण्य भी जोड़ दिया (**नव पञ्च च वर्षाणिदण्डकारण्यमाश्रितम्**[1])। मन्थरा द्वारा वनवास की अवधि 14 वर्ष[2] का आधार स्पष्ट नहीं होता। मन्थरा ने इस अवधि को इसलिए कहा है कि इतनी अवधि में भरत प्रजा में अपने लिए स्नेह पैदा कर लेंगे और राज्य पर स्थिर हो जाएँगे (**प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति।**[3])। मेरे सुहृद् डॉ. उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी (वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने मुझे बताया है कि उन्होंने कहीं यह पढ़ा है कि 14 वर्षों तक राज्य से विरत होने पर राज्याधिकार समाप्त हो जाता है, किन्तु उन्हें ग्रन्थ-सन्दर्भ ध्यान में नहीं है। इस दृष्टि से मैंने स्मृतियों को देखा और *याज्ञवल्क्यस्मृति* में सीधा सन्दर्भ तो नहीं मिला किन्तु किसान की भूमि पर बिना किसी विरोध किए उसके देखते हुए कोई उस भूमि का उपभोग करता है तो 20 वर्ष की समयावधि पर भूस्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है (**पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी।**[4]) किन्तु 14 वर्ष का कोई सन्दर्भ नहीं है। बौद्धों की रामकथा *दशरथ जातक* बिल्कुल अलहदा है, वनवास की अवधि भी यहाँ 12 वर्ष कही गयी है।[5] सम्भवतः 14 वर्ष का कोई आधार न होने एवं अटपटा होने के कारण ही भास ने कैकेयी के 14 दिन के प्रतीकात्मक वनवास माँगने की इच्छा का उल्लेख करते हुए आकुलतावश 14 वर्ष कहला गया जैसा अविश्वसनीय कथन कहलवाया है।[6]

पौराणिक सन्दर्भों में 14 वर्षों की अस्वाभाविक अवधि को तर्क सम्मत करने के लिए श्रवण कुमार के प्रपितामह ऋषि रत्न की कैकेयी के विवाह

---

1. *वा.रा.*, 2.11.26
2. वही, 2.9.20
3. वही, 2.9.21
4. *याज्ञवल्क्यस्मृति*, 2.24
5. द्रष्टव्य, कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, पृ. 59
6. *प्रतिमानाटक*, अङ्क 6

के अवसर पर अयोध्या के सिंहासन से जुड़ी अनिष्टकारी अवधि के भविष्य दर्शन का कथन प्रख्यात कथावाचक मोरारी बापू अपने प्रवचनों में करते हैं।[1] यह सभी प्रयत्न अस्वाभाविक परिस्थिति को बोधगम्य करने का उपाय भर हैं।

नारद के रामचरित-कथन[2] में कहीं भी 14 वर्ष का उल्लेख नहीं है। *महाभारत* के 'रामोपाख्यान' एवं *विष्णु पुराण* में भी अवधि का उल्लेख नहीं है। *भागवत पुराण* राम के लङ्का से वापसी के समय राम के लिए **चीर्णव्रत** शब्द का प्रयोग (**ययौ चीर्णव्रतःपुरीम्**[3]) करता है किन्तु वनवास की निर्धारित अवधि का कोई सन्दर्भ नहीं है। मूलतः यह एक बहुत लम्बी अवधि का द्योतक है जिसे कैकेयी ने एक स्थान पर '**सुचिराय**' शब्द से बोधित किया है (**वनं गते वा सुचिराय राघवे**[4])। वस्तुतः कैकेयी तो राम को आजीवन वनवास चाहती थी जैसा कि उसके द्वारा राम के लिए असमञ्ज के देश-निकाले का सन्दर्भ दशरथ से किया गया कि जिस प्रकार सगर के पुत्र के लिए राज्य का द्वार सदा के लिए बन्द कर दिया गया था राम को भी उसी प्रकार यहाँ से निकल जाना चाहिए-

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत्।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति।।[5]

किन्तु यह वस्तुतः कैकेयी की दुष्टभावता के लिए प्रयुक्त प्रक्षेप है।

अन्यान्य राम-कथाओं (*दसरथ जातक* एवं *वसुदेवहिण्डी*) में 12 वर्ष एवं *पउमचरिउ* में 16 वर्ष की अवधि भी मिलती है।[6]

---

1. द्रष्टव्य, सत्य चैतन्य, उपरिउल्लिखित
2. *वा.रा.*, 1.1
3. *भागवत पुराण*, 9.10.331
4. *वा.रा.*, 2.9.63
5. वही, 2.36.16
6. कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, पृ. 398

28
दो-वरों के विपर्यय

वेश सम्बन्धी निर्देश में कहीं चीरधारी तो कहीं अजिन-चीरधारी का और यदि तपस्वी — तो शस्त्र-धारण कैसे किया, ऐसे कई प्रश्न उठते हैं जिनका कोई उत्तर है ही नहीं। 'दो वरों' में भी कभी पहला वर 'भरत का अभिषेक' और दूसरा 'राम का विवासन'[1] तो कहीं पहला 'राम का विवासन' और तब 'भरत का अभिषेक'[2] जैसा विपर्यय द्रष्टव्य है, और कहीं-कहीं तो यह विपर्यय एक साथ ही कथित है।[3] एक बार 'विवासन' का अर्थ 'वनवास' ले लिया गया तो मूल शब्द के स्थान पर उन्मुक्ततापूर्वक कई दूसरे शब्दों का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता मिल गई, उदारणार्थ - प्रव्रजन[4], प्रव्राजय[5], प्रव्राजित[6], विप्रवासन[7], वनप्रयाण[8], वनवास[9], वनचरण[10], अरण्यगमन[11], अरण्यप्रवेश[12], वनप्रस्थापन[13], दण्डकारण्यमाश्रय[14], दण्डकप्रस्थापन[15], दण्डकारण्यगमन[16]।

---

1. *वा.रा.*, 2.8.39, 2.9.20, 2.9.48, 2.11.25-27, 2.12.58-59, 2.18.33, 2.72.49, 2.107.6
2. वही, 2.9.2, 2.9.30, 2.9.58, 2.9.63-64, 2.12.51, 2.18.35-36
3. *वा.रा.*, 2.9.2 एवं 2.9.20, 2.12.51 एवं 2.12.59, 2.107.6, 2.111.32
4. वही, 2.9.30, 2.107.6
5. वही, 2.14.9
6. वही, 2.9.20, 2.9.31-32, 2.12.66
7. वही, 2.12.24
8. वही, 2.12.28
9. वही, 2.12.51
10. वही, 2.14.22
11. वही, 2.12.99
12. वही, 2.18.35
13. वही, 2.12.83
14. वही, 2.11.26, 2.18.37
15. वही, 2.13.10
16. वही, 2.18.33

29

'दो वरों' के बावजूद एकवचनात्मक 'वर' का प्रयोग क्यों?

दो वरों की कल्पना (**दत्तौ ते द्वौ वरौ**[1] अथवा **द्वावयाचत**[2]) के बावजूद अनेक स्थानों पर एकवचनात्मक 'वर' (**वरम्** अथवा **वरः**) शब्द का 11 बार प्रयोग[3] किया गया है। संक्षेप में यह कि दूषक क्षेपककार को अपने कथन के उद्देश्य का स्पष्ट आभास नहीं है। वस्तुतः मन्थरा और कैकेयी के माध्यम से गढ़ा गया यह प्रसङ्ग बचकाना प्रयास जैसा है, इसमें आर्ष कवि वाल्मीकि का मानक काव्य-बोध नहीं दिखायी देता।

30

14 वर्ष वनवास की प्रसिद्धि लोक में भास के पूर्व से

भास के *प्रतिमानाटक* में मन्थरा एवं 14 वर्ष के वनवास का सन्दर्भ प्राप्त होने के आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि कैकेयी की दासी मन्थरा एवं राम के 14 वर्ष के लिए वनवास जाने की बात पहली शती ईसापूर्व के पहले ही प्रसिद्धि पाकर लोक में घर कर गयी थी। 14 वर्ष के वनवास को अनुचित-सा मानते हुए ही सम्भवतः भास ने कैकेयी द्वारा कहे जाने वाले 14 दिन को गलती से 14 वर्ष कहा जाना घटित किया है — **कैकेयी - जात! चतुर्दश दिवसा वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम्।।**[4] ऐसा प्रयत्न तत्युगीन लोक-प्रसिद्धि को निराकृत करने जैसा प्रयास-मात्र लगता है।

---

1. *वा.रा.*, 2.9.17
2. वही, 3.47.8
3. वही, 2.9.29, 2.11.15, 2.11.16, 2.11.20, 2.12.58, 2.13.3, 2.13.18, 2.14.8, 2.18.22-23, 2.34.42, 3.47.6
4. *प्रतिमानाटक*, अङ्क 6

विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्[1] में वस्तुतः दशरथ ने राम को 'अभिषेक से वञ्चित' कर दिया। हिन्दी का अनुवाद "दशरथ ने .... 'राम को वनवास' दे दिया" सही नहीं है। श्लोक 2.12.72 में **विप्रकारस्य रामस्य** (राम के अभिषेक का निवारण) **विवासयामास सुतं रामम्** का सही माने में स्पष्टीकरण है। कैकेयी ने जो राम को वनवास माँगा उसका पूरा-पूरा अनौचित्य दशरथ ने अयोध्याकाण्ड के सर्ग 12 में बहुत ही विस्तार से किया है और श्लोक 109 में कड़े शब्दों में इनकार कर दिया–

प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा
सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज।
न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं
ममाहितं केकयराजपांसने।।

ओ, केकयराज के कुल की जीती-जागती कलङ्क! तू चाहे ग्लानि में डूब जा अथवा आग में जलकर खाक हो जा या विष खाकर प्राण दे दे अथवा पृथ्वी में हजारों दरारें बनाकर उसी में समा जा, परन्तु मेरा अहित करनेवाली यह अत्यन्त कठोर बात मैं कदापि नहीं मानूँगा। ऐसा ही दो टूक इनकार *ब्रह्म पुराण* के **राजा नैव च दत्तवान**[2] में भी है।

अगले अध्याय (अयोध्याकाण्ड, सर्ग 13) में वे पुनः कैकेयी को समझाने की कोशिश करते हैं और इतने पर भी कैकेयी के न मानने पर वे कैकेयी से अपने वैवाहिक सम्बन्ध का विच्छेद कर देते हैं और उसके साथ ही कैकेयी से उत्पन्न पुत्र (भरत) का भी त्याग करते हैं –

यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः।
संत्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया।।[3]

---

1. *वा.रा.*, 1.1.23
2. *ब्रह्म पुराण*, (खेमराज संस्करण) गौतमी खण्ड, 53.107
3. *वा.रा.*, 2.14.14

दशरथ ने स्पष्ट ही कैकेयी का कहा नहीं माना। यह सन्दर्भ बहुत ही महत्वपूर्ण है जिस पर लोगों ने ध्यान दिया ही नहीं है।

31

दशरथ ने राम को वनगमन की आज्ञा कभी दी ही नहीं

दशरथ ने तो राम वनगमन की आज्ञा कभी दी ही नहीं। जब राम दशरथ के पास बुलाए गए तो दशरथ कुछ कह ही नहीं सके –

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणम्।
शशाकनृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्।।[1]

महाभारत के रामोपाख्यान में भी ऐसा ही कहा गया है–

स तद् राजा वचः श्रुत्वा विप्रियं दारुणोदयम्।
दुःखार्तो भरतश्रेष्ठ न किञ्चिद्व्यजहार ह।।[2]

जो भी कहा कैकेयी ने कहा। सब कुछ मानते हुए भी *वाल्मीकीय रामायण* में राम ने कैकेयी से कहा है कि 'मेरे मन को एक ही हार्दिक दुख सता रहा है कि स्वयं महाराज ने मुझसे भरत के अभिषेक की बात नहीं कही' (**स्वयन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्।**[3])। वन जाने के पूर्व जब राम पिता से आज्ञा लेने पहुँचे तो दशरथ अचेत हो गए (**तमसम्प्राप्तदुःखार्तः पपात भुवि मूर्छितः।**[4]) और जब उन्हें चेत आया[5] तो राम को वन में जाने की आज्ञा देने की बजाय कहा कि 'राम! तुम मुझे कैद करके अयोध्या के राजा बन जाओ' (**अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्।।**[6])। आगे 'फिर लौट आने के लिए

---

1. *वा.रा.*, 2.18.3
2. *महाभारत*, वनपर्व, 277.27
3. *वा.रा.*, 2.19.6
4. वही, 2.34.17
5. वही, 2.34.21
6. वही, 2.34.26

जाने को कहते हुए'[1] दशरथ ने सत्य की शपथ खाकर कहा कि 'पुत्र! तुम्हारा वन में जाना मुझे प्रिय नहीं है' (**न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव।**[2])। केवल श्लोक 2.39.10 अपवाद स्वरूप है जहाँ दशरथ ने सुमन्त्र को राम को जनपद से बाहर तक (**इतो जनपदात् परम्**) पहुँचाने के लिए रथ लाने को कहा है जो राम के स्व-निर्णय से वनगमन के सम्बन्ध में अधिक उचित एवं सटीक लगता है। *ब्रह्म पुराण* में स्पष्ट कहा गया है कि दशरथ ने कैकेयी को कोई वर नहीं दिया-

कैकेयी विप्रमातस्ये वनप्रव्राजनं तथा।
भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान्।।[3]

32
कैकेयी की 'दुष्टभावता' के विवरण

कैकेयी की '**दुष्टभावता**'[4] को दर्शाने के लिए (**कैकेय्या दुष्टभावता**) कैकेयी के कठोरता पूर्वक दो वर माँगने;[5] दशरथ के समझाने-फटकारने एवं विलाप और अनुनय-विनय को कैकेयी द्वारा एकदम अनसुना करने (**... दुष्टभावा... भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम्।।**);[6] वरों की पूर्ति के लिए कैकेयी का दुराग्रह;[7] राम से कैकेयी के अप्रत्याशित क्रूर वचन;[8] राम को तुरत वन चले जाने के लिए उकसाना;[9] सुमन्त्र के समझाने पर भी कैकेयी का टस-से-मस न होना;[10] कैकेयी की 'दुष्टभावता' को सिद्ध करने के लिए

1. *वा.रा.*, 2.34.31
2. वही, 2.34.36
3. *ब्रह्म पुराण*, गौतमी खण्ड, 53.107
4. *वा.रा.*, 1.3.12
5. वही, अयोध्या काण्ड, सर्ग 11
6. वही, सर्ग 12-13
7. वही, सर्ग 14
8. वही, सर्ग 18
9. वही, सर्ग 19
10. वही, सर्ग 35

सुमन्त्र द्वारा कैकेयी के माता के दुष्टभावी स्वभाव तक का उल्लेख[1] [कुछ परवर्ती रचनाओं में तो यहाँ तक कि सीता-परित्याग की असत्य घटना[2] हेतु कैकेयी को उत्प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया गया — *आनन्द रामायण*[3] आदि एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के रामकथा में यह कार्य कैकेयी ने अपनी पुत्री ककुआ के माध्यम से सम्पन्न किया, ऐसा प्रचलित है[4]]; राम के साथ सेना-खजाना आदि भेजने का कैकेयी का प्रखर विरोध;[5] वयोवृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ के समझाने का भी कैकेयी पर कोई असर न होना;[6] कैकेयी का सीता को भी वल्कल-वस्त्र देना[7] जैसे घटना-क्रमों का विवरण बड़े ही चावपूर्वक दिया गया है। ऐसा लगता है कि कैकेयी की दुष्टभावता की पराकाष्ठा के विवरणों को देखते हुए किसी न किसी रचनाकार द्वारा वसिष्ठ और दशरथ के प्रतीकार के माध्यम से सीता के लिए वल्कल-वस्त्र का विरोध एवं बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों का प्रदान कराया गया है। कैकेयी को दशरथ के विलापों, उपालम्भों तथा उनके और सुमन्त्र के द्वारा समझाने एवं फटकारने में जहाँ इसके पूर्व के वर्णनों में कैकेयी की दुष्टभावता को उजागर करने का प्रयास दिखाई देता है वहीं सीता के लिए वल्कल-वस्त्र के विरोध में कैकेयी पर लगाम कसने जैसा वर्णन है। सेना-खजाना आदि दिए जाने का कैकेयी के विरोध पर दशरथ मुखर होकर कहते हैं कि

---

1. *वा.रा.*, 2.35.18-23
2. द्रष्टव्य, *राम ने सीता-परित्याग कभी किया ही नहीं*, विपिन किशोर सिन्हा, वाराणसी, वि.सं. 2068
3. *आनन्द रामायण*, सम्पा. रामतेज पाण्डे, वाराणसी, 2013, जन्मकाण्ड, सर्ग 3, पृ. 303-304
4. द्रष्टव्य, *दि राम जातक इन लाओस, ए स्टडी इन जीम फ्रा लक फ्रा लम*, सच्चिदानन्द सहाय, दिल्ली, 1996, पृ. 30
5. *वा.रा.*, 2.36
6. वही, 2.36
7. वही, 2.37

ऐसे प्रतिबन्ध के लिए तूने पहले क्यों नहीं प्रार्थना की थी (**अनार्ये कृत्यमारब्धं किं न पूर्वमुपारुध:।।**[1])। सीता के लिए वल्कल-वस्त्र का विरोध रनिवास की स्त्रियों ने किया (**वत्स नैवं नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी।।**[2])। वसिष्ठ ने अपना विरोध यह कहते हुए जताया कि कैकेयी तूने राजा से धोखा किया है और अब तू सीमा के बाहर जा रही है (**वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि।**[3]) और वसिष्ठ ने यह भी कहा कि वनवास का वर केवल राम के लिए ही है वर माँगने के समय सीता के वनवास की कोई बात नहीं थी (**एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृत: केकयराजपुत्रि। ... नेयं वृता ते वर सम्प्रदाने।।**[4])। दशरथ ने भी सीता के लिए वल्कल-वस्त्र का निषेध किया और कहा कि ऐसी प्रतिज्ञा मैंने नहीं की है (**कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हसि। ... नेयं प्रतिज्ञा ममदत्तपूर्वा।**[5]) तुम प्राप्त वर का अतिक्रमण कर रही हो (**तत्वेतत् समतिक्रम्य ...**[6])।

33

राम ने वन जाने का निर्णय स्वयं किया

15वीं अथवा 16वीं शती में लिखे गए *अध्यात्मरामायण*[7] में राम के राज्याभिषेक के निश्चित होने पर नारद द्वारा प्रश्न कराया गया है कि हे राम आपने राक्षसों के संहार का जो सङ्कल्प लिया था वह आप के सिंहासनारूढ़

---

1. *वा.रा.*, 2.36.14
2. वही, 2.37.16
3. वही, 2.37.22
4. वही, 2.37.35, 36
5. वही, 2.38.3, 6
6. वही, 2.38.11-12
7. एन. सिद्धान्तरत्न सम्पादित, कलकत्ता संस्कृत सीरीज संख्या 11, कलकत्ता, 1935, पी.सी. बागची की प्रस्तावना पृ. 76

होने पर कैसे पूरा होगा[1] और इसके उत्तर में राम ने कहा है कि मैं कल ही दण्डकारण्य जाऊँगा- **रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम्**[2]।

अध्यात्मरामायण के रचनाकार ने यह ध्यान नहीं रखा कि पूर्व-रचित *वाल्मीकीय रामायण* (1.1.20 एवं आगे) में नारद ने ही राम के राज्याभिषेक के समय की सारी घटनाओं का विवरण वाल्मीकि को बताया है। वहाँ राज्याभिषेक के पूर्व घटित ऐसी किसी बात का उल्लेख नहीं है। परवर्ती रचनाओं में ऐसे विपर्यय सामान्य रूप से द्रष्टव्य होते हैं वे ऐतिहासिक तथ्यों के प्रमाण कथमपि नहीं हैं।

राम वनगमन से जुड़ी *वाल्मीकीय रामायण* में वर्णित घटनाओं की अन्तरङ्गता से अध्ययन करने पर यह धारणा बनती है कि **युवराज पद छोड़ने के बाद सारा कुछ भरत के लिए त्याग कर राम ने स्वयं वन जाने का निर्णय लिया**। यहाँ राम द्वारा कहे गए कुछ सन्दर्भों की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। राम जब कोप-भवन में दशरथ और कैकेयी के समक्ष उपस्थित होते हैं और कैकेयी अपने पुत्र के अभिषेक और राम के लिए वनवास के प्राप्त वरों का उल्लेख करती है तो राम का उत्तर स्वीकारात्मक था और जिस प्रकार से वे अपनी बात कह रहे थे उसमें कैकेयी को लगा कि **'राम वन जाने को स्वयं उत्सुक थे'**, यह भाँपकर कैकेयी कहती है कि वन जाने में तुम्हें देर नहीं करनी चाहिए - **तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम्**[3]। वे वन में जाने को उत्सुक थे और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे (**न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्**।[4])। राज्य और वनवास में वनवास को राम ने अभ्युदयकारी माना (**राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः**।[5])।

---

1. *अध्यात्मरामायण*, 2.1.34-35
2. वही, 2.1.38
3. *वा.रा.*, 2.19.14
4. वही, 2.19.33
5. वही, 2.22.29

राम ने वनवास का दृढ़ निश्चय किया (**तथा हि रामं वनवास निश्चितं, ददर्श देवी परमेण चेतसा।**[1])। राम ने वन जाने का निश्चित विचार बनाया (**वनप्रवेशे कृत बुद्धि निश्चयः।**[2])। मैंने वनवास का वरण किया है (**अहं वरण्ये वत्स्यामि न मे राज्यस्य कांक्षिता।**[3])। वनवास का मेरा निश्चय बदल नहीं सकता (**वनवासकृता बुद्धिर्न मे चलिष्यति।**[4])। वनवास के मेरे निश्चय के विपरीत कुछ नहीं हो सकता (**नहि मेऽस्ति विपर्ययः।**[5])। इन सन्दर्भों के उल्लेख भले ही देवासुर-सङ्ग्राम से जुड़े दो वरों में से एक से संलग्न हैं किन्तु ये राम की मूल भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। वल्कल-धारण करने के बाद रनिवास की स्त्रियों ने कहा कि राम तुम धर्मपरायण हो स्वयं यहाँ नहीं रहना चाहते हो। - **धर्मनित्यः स्वयं स्थातुं न हीदानींत्वमिच्छसि।**[6] लक्ष्मण ने हनुमान से राम का वन में आने का कारण राज्य से वञ्चित होना बताया है (**राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा। राज्यात् भ्रष्टो मया वस्तु सार्द्धमिहागतः।।**[7]) जिस कारण वे यहाँ (वन में) आए हैं, यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि उन्हें किसी ने वनवास दिया है और वे वन में रहने आए हैं, स्पष्ट ही उनका वन में आना स्वेच्छया हुआ था। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में अभिषेक परित्याग के बाद राम के वन जाने की बात है - **स जगाम वनं वीरः**[8] - यहाँ न तो उनके खास वेश का उल्लेख है न वन का नाम और न ही वनवास की अवधि का। तीसरी सदी की

---

1. *वा.रा.*, 2.24.38
2. वही, 2.33.31
3. वही, 2.34.28
4. वही, 2.34.42
5. वही, 2.34.49
6. वही, 2.37.19
7. वही, 3.4.10
8. वही, 1.1.24

चीनी बौद्ध रामकथा *अनामकं जातक* के कारण में यद्यपि भिन्नता है किन्तु राम द्वारा स्वेच्छा से राज्य त्यागने का उल्लेख है।[1]

चित्रकूट से राम के दण्डकवन जाने का कारण भरत के साथ आए हुए जन-समूह, माताओं एवं भरत की याद आने से चित्त का शोकमग्न होना तथा भरत की सेना के हाथी-घोड़ों की लीद से स्थान का गन्दा हो जाना (**स्मृति ... नित्यमनुशोचतः ... हयहस्तिकरीषैश्च उपमर्दः**)[2] और नागरिक-जनों का बहुधा आना-जाना था-

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च।
तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान् प्रविवेश ह।।[3]

राम का कैकेयी के वर के कारण दण्डकवन के लिए प्रस्थान अथवा किष्किन्धाकाण्ड के आरम्भ में वर्णित राक्षसों का उत्पात[4] दण्डकवन जाने का मूल कारण नहीं था। कारण था नागरिक-जनों का बहुधा आना-जाना। नागरिक-जनों के बहुधा आने-जाने को राम ने अपने वनवास में व्यवधान मानते हुए ही श्रृङ्गवेरपुर एवं भरद्वाज आश्रम से भी प्रस्थान किया था-

नेदानीं गुह योग्योयं वासो मे सजने वने।[6]
... ...
भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिमाश्रमम्।।
आगमिष्यति वैदेहीं मां चाभिप्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये।।[7]

---

1. द्रष्टव्य, कामिल बुल्के, उपरिउल्लिखित, पृ. 61
2. *वा.रा.*, 2.117.2-3
3. वही, 1.1.40
4. वही, 3.1
5. वही, 2.52.66
6. वही, 2.54.24-25
7. *महाभारत*, वनपर्व, 277.40

महाभारत में भी नागरिक-जनों का बहुधा आना-जाना ही दण्डकवन जाने का कारण कहा गया है-

रामस्तु पुनराशंक्य पौरजानपदागमम्।
प्रविवेश महारण्यशरभङ्गाश्रमं प्रति।।[1]

राम दण्डकवन में इसलिए नहीं गए कि उन्हें दण्डकवन में ही वास करना था। खास दण्डकवन में ही बिताने की बात रही होती तो राम सुदूर दक्षिण तक कैसे गए होते। *महाभारत* की रामकथा भी दण्डकवन भेजे जाने की शर्त नहीं कहती और चित्रकूट से दण्डकवन जाने का कारण नगर और जनपद के लोगों के बराबर आने-जाने की आशङ्का ही बताया है।[2] बहुत महत्वपूर्ण बात यह भी उल्लेख्य है कि हालाँकि कैकेयी राम के वन जाने के लिए दशरथ से कहती है किन्तु श्लोक[3] में कहा गया है कि **वनं प्रतस्थे धर्मात्मा राजा सत्यो भवत्विति**। दु:ख के कारण दशरथ कुछ भी बोल न सके थे किन्तु पिता के सत्य की रक्षा हो इस उद्देश्य से राम ने स्वयं ही वन प्रस्थान किया।

भरत ने राम के पक्ष में अपना अभिषेक अस्वीकार कर दिया था और भरत के बार-बार निवेदन पर भी राम अयोध्या वापस आने को तैयार नहीं थे, अत: राम के प्रतीक रूप में राम की चरणपादुका लेकर भरत को अयोध्या लौटना पड़ा। राम का वनवास स्वयं का निर्णय था अत: वे राज्य छोड़कर अवधि-रहित काल के लिए वन में आए थे। ऐसे कई सन्दर्भ आए हैं जहाँ राम के वनवास को चिरकाल के लिए (**चिराय**) कहा गया है। चिराय शब्द का पहला प्रयोग कैकेयी ने किया है — **वनं गते च सुचिराय राघवे**।[4] कौसल्या ने राम के लिए वन में चिरकाल तक के लिए हित-साधन की कामना की — **अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते**

1. *महाभारत*, वनपर्व, 277.40
2. वही, 277.28
3. वही, 277.28
4. *वा.रा.*, 2.9.63

हितानि कांक्षन्तु दिशश्च राघव।।[1] राम ने दशरथ से कहा — **वनं गमिष्यामि चिराय सेविताम्**[2]। स्वेच्छा से बिना अवधि बन्धन के वन जाने का निर्णय लेकर राम वन को गए थे। राम के अपने निर्णय पर अडिग रहने के कारण ही दशरथ ने सुमन्त्र से राम को जनपद से बाहर तक (**इतो जनपदात् परम्**[3]) पहुँचाने के लिए रथ लाने को कहा है। भरत अपने अभिषेक को अस्वीकार करके राम ही राजा होंगे (**रामो पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यिति महीपतिः।**[4]) कहकर उन्हें मनाने के लिए चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूट में भरत द्वारा अयोध्या वापस चलने के लिए किए गए निवेदन को राम ने यह कहते हुए इनकार किया था कि मेरे वन में आने से माता को प्रसन्नता हुई थी अतः वापसी नहीं (**प्रहृष्ट मानसा देवी कैकेयी चाभवत तदा**[5]; राम के यह कहने पर कि मैं तुरन्त वन को चला जाता हूँ — **दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छम्येव हि सत्वरः**[6] (कैकेयी की प्रसन्नता का सन्दर्भ 2.19.12 में है — **सा हृष्टा तस्य तद् वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी।**)। और, राम ने अयोध्या वापस जाने से इनकार इसलिए भी किया कि उस समय तक उन्हें कैकेयी के पुत्र को उत्तराधिकार देने की शर्त की दशरथ द्वारा स्वीकृति के बारे में जानकारी हो चुकी थी। राम ने चित्रकूट में भरत से इसके बारे में बताया–

पुरा भ्राता पितु नः मातरं ते समुद्वहन।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमुत्तमम्।।[7]

---

1. *वा.रा.*, 2.19.45
2. वही, 2.34.55
3. वही, 2.39.10
4. वही, 2.79.8
5. वही, 2.109.24
6. वही, 2.19.11
7. वही, 2.107.3



चित्रकूट में राम से भरत का निवेदन

वनवास के 14 वर्ष की अवधि का भी कोई अन्य प्रामाणिक उल्लेख नहीं है। भरत के पक्ष में राज्य का स्वेच्छया त्याग कर देने पर ऐसे बन्धन का महत्व ही क्या था। भरत के बार-बार के वापसी हेतु निवेदन को राम ने नहीं माना, अन्ततः राम के प्रतिनिधि के रूप में[1] उनकी चरण पादुकाएँ ग्रहीत हुईं। इसी समय 14 वर्ष के बीतने पर अगले दिन अयोध्या में वापसी न होने पर भरत ने आत्मदाह की घोषणा की-

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम।।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेश्यामि हुताशनम्।[2]

और राम ने अपनी समय पर वापसी की स्वीकृति दी (**तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्।**[3]) — ऐसा वर्णित है। घटनाओं के ताल-मेल को ध्यान से विवेचित करने पर ऐसा लगता है कि पादुका-प्राप्ति के बाद राम की वापसी निश्चित की गई होगी। यह सम्भावना की जा सकती है कि 'राम द्वारा ग्रहीत **चिरकालिक** वनवास' को इसी समय **अवधि-गत** किया गया हो, किन्तु इस अवधि-सीमा का आधार क्या था कि इसे 14 वर्ष माना गया यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं होता। वस्तुतः इस मूल घटनाक्रम के आधार पर ही मन्थरा-कैकेयी प्रकरण में आरम्भ[4] से ही 14 वर्ष की वनवास अवधि को विशेषरूप से उल्लिखित कियां गया है और उसी का निर्वहन मात्र सर्ग 112 में दृष्टिगत है। नारद के विवरण में भरत को नन्दिग्राम में राम-पादुका स्थापित करके अपने अग्रज की वापसी की प्रतीक्षा में राज्य करने का उल्लेख मात्र है।[5] वनवास की अज्ञात आगे आनेवाली घटनाओं को किसी पूर्वनिर्धारित अवधि में कैसे बाँधा जा सकता था।

---

1. *वा.रा.*, 2.112.21-22
2. वही, 2.112.25-26
3. वही, 2.112.26
4. वही, 2.9.20
5. वही, 1.1.38-39

'दृष्ट्वा'[1] को 'श्रुत्वा'[2] में बदलकर जिस कथा की निर्मिति की गई वह दशरथ के कहे गए एक श्लोक के आधार पर भी अस्वीकार्य है जहाँ उन्होंने यह स्पष्ट कहा है कि 'जब राम अभिषेक के लिए यहाँ आए थे, उस समय तूने जो कुछ कहा था, उसे सुनकर मैंने उतने के लिए ही प्रतिज्ञा की थी' –

प्रतिज्ञातं मया तावत् त्वयोक्तं देवि श्रृण्वता।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः।।[3]

लक्ष्मण ने भी वन में आने का कारण हनुमान से बताते हुए अभिषेक होते समय ही विघ्न आने की बात कही है कि जब इन्हें (राम को) राज्य-सम्पत्ति से संयुक्त किया जा रहा था, उस समय कुछ ऐसा कारण आ पड़ा कि ये राज्य से वञ्चित हो गए और हम साथ ही वन में रहने के लिए यहाँ आ गए-

राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा।
राज्यात् भ्रष्टो मया वस्तु सार्द्धमिहागतः।।[4]

ये दोनों ही कथन प्रतिमानाटक में भास के पूर्वोद्धृत कथन (**शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके, छत्रं स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते। सम्भ्रान्तया मन्थरया च कर्णे, राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा।।**[5]) का ध्यान तो कराता ही है साथ ही *वाल्मीकीय रामायण* के 1.1.21-22 के कथन – **तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याऽथकैकयी।। पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।** – की पुष्टि करता है कि कैकेयी ने अपनी 'भरत के अभिषेक की बात' अभिषेक के घटना-स्थल पर ही कही थी, और कैकेयी की माँग **विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्**[6]

---

1. *वा.रा.*, 1.1.22
2. वही, 2.9.20
3. वही, 2.38.11
4. वही, 3.4.10
5. *प्रतिमानाटक*, 1.7
6. *वा.रा.*, 1.1.22

(राम को अभिषेक से विरत करना और भरत को अभिषिक्त करना) अपने विवाह के अवसर पर की गई शर्त (**पुरा भ्राता पितु नः मातरं ते समुद्वहन। मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमुत्तमम्।।**[1]) को सत्यानुरूप आचरित करने के लिए था। पिता के निर्देश के अनुसार कैकेयी का प्रिय करने हेतु पिता की प्रतिज्ञा का अनुपालन होने के लिए **पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात् प्रतिज्ञामनुपालयन् ...**[2] राम ने अभिषेक के आसन से हटकर भरत के पक्ष में सारे ऐश्वर्य का त्याग करके स्वयं वन जाने का निर्णय लिया (**स जगाम वनं वीरः**[3])। कैकेयी ने भी राम को पिता के सत्यप्रतिज्ञता की पूर्ति के लिए ही कहा है (**यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमर्हसि।**[4]) किन्तु इस वाक्य को इस स्थान पर राम को वनगमन के लिए प्रेरित करने के लिए उपयोग में लाया गया है। पिता के कथन में पहले वन जाने, फिर भरत के अभिषेक की बात और पुनः अभिषेक को त्यागकर वन जाने एवं कोसलनरेश की भूमि पर भरत के शासन की बात कही गई है[5] जो क्रम-भेद तथा पुनरुक्ति-दोष के कारण अग्राह्य है। वन न भेजने की पिता की शपथ पूर्वक कही गई इच्छा[6] और वन जाने के स्थान पर राजा को ही कैद करके राज्य अधिकृत कर लेने की दशरथ की आज्ञा[7] राम ने नहीं मानी। वस्तुतः पिता को सत्यप्रतिज्ञ करने की जिम्मेदारी निभाने का अर्थ कैकेयी-पुत्र के लिए अभिषेक त्यागने का ही है और

---

1. *वा.रा.*, 2.107.3
2. वही, 1.1.24 का श्लोकान्वय
3. वही, 1.1.24
4. वही, 2.18.34
5. वही, 2.18.35-38
6. वही, 2.34.36
7. वही, 2.34.26

कुछ दूसरा नहीं। *महाभारत* भी 'राम के स्वयं वन जाने के निर्णय' की बात कहता है-

ततस्मथोक्तं पितरं रामो विज्ञाय वीर्यवान।
वनं प्रतस्थे धर्मात्मा राजा सत्यो भवत्यिति।।[1]

यहाँ राम से न दशरथ न कैकेयी ने वन जाने की बात कही, वे 'पिता के पूर्वोक्त वरदान की बात जान कर राजा के सत्य की रक्षा हो, इस उद्देश्य से स्वयं ही वन को प्रस्थान किया'। राम को युवराजपद देने के समय विवाह के अवसर पर दिए गए वादे (**'समय'**) के लिए सत्य-प्रतिज्ञ होने का कैकेयी का आग्रह पिता की सत्य-प्रतिज्ञता के लिए राम को पूरा करना पड़ा जिसे उन्होंने उदात्तभाव से स्वीकार किया, यहाँ कालिदास का श्लोक उल्लेखनीय है-

पित्रा दत्तां रुदन्रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत्।।
दधतो मङ्गलक्षौमे वासनस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।।[2]

और भरत के लिए एकछत्र निष्कण्टक राज्य छोड़ दिया। चित्रकूट में राम ने स्पष्ट रूप से कहा है कि माता कैकेयी के पुत्र को राज्य प्राप्त हो यही मेरा प्रथम कल्प अर्थात् एकमात्र उद्देश्य है-

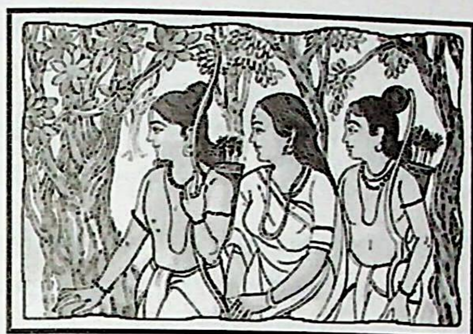
एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी।
भरतारक्षितं स्फीतं पुत्र राज्यमवाप्यसे।।[3]

राम के इसी कदम को महत्व देते हुए *भागवत पुराण* कहता है कि पिता के लिए राज्य का त्याग करके वन-वन विचरनेवाले राम हमारी रक्षा करें-

गुर्वर्थे त्यक्त राजो व्यचरदनुवनम् ... कोशलेन्द्रोऽवतान्नः[4]

---

1. *महाभारत,* 3.277.28
2. *रघुवंश,* 12.7-8
3. *वा.रा.,* 2.52.63
4. *भागवत पुराण,* 9.10.4



राममार्गवेय

उनका वन–गमन असङ्ग भाव से था–

राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः।[1]

विष्णु पुराण भी राज्य–लक्ष्मी को कुछ भी न गिनकर राम के वन जाने की बात को ही महत्व देता है–

पितृवचनाच्चागणितराज्याभिलाषो भ्रातृभार्यासमेतो वनं प्रविवेश।[2]

ब्रह्म पुराण भी राम द्वारा स्वयं वन जाने का सन्दर्भ देता है। गौतमी खण्ड के श्लोक 53.103 में कैकेयी की माँग 'राम को वन और भरत को राज्य' को दशरथ ने दिया नहीं (**राजा नैव च दत्तवान्**) किन्तु राम ने पिता के सत्य की रक्षा के लिए राज्य की किसी प्रकार की तृष्णा किए वन चले गए (**पितरं सत्यवाक्यं तु कुर्वन् रामो महावनम्। ... राज्यतृष्णाविवर्जिते।**[3]) राम का चरित्र इस कारण महानता को प्राप्त हुआ। राम का यह वनचारी रूप पूजार्ह माना गया जिसकी मूर्तियाँ व चित्रलेख भी प्राप्त होते हैं। पिता द्वारा प्रदत्त वरकी सत्यता की रक्षा तथा माता कैकेयी को निःशङ्क करते हुए भरत के लिए निष्कण्टक राज्य प्रदान करके राम का वनगमन

---

1. *भागवत पुराण*, 9.10.8
2. *विष्णु पुराण*, 4.4.95
3. *ब्रह्म पुराण*, गौतमी खण्ड, 53.107, 110




राम-सीता एवं लक्ष्मण का वनगमन अङ्कित उज्जैन का सिक्का
(डी. एल. नीमा के व्यक्तिगत संग्रह से देवेन्द्र हाण्डा द्वारा प्रकाशित)

उनकी व्यक्तिगत पहचान बन गई। यह कृत्य उनका एक स्वरूप बन गया। *वाल्मीकीय रामायण* का अधरोल्लिखित श्लोक इसी का वर्णन करता है-

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।।[1]

आगे-आगे राम बीच में सुशोभना सीता एवं हाथ में धनुष लिए लक्ष्मण पीछे-पीछे (दण्डकारण्य के तपोवनों में विचरण करने — **जगाम रम्याणि तपोवनानि।**)[2] चले। इस स्वरूप का उत्कीर्णन एवं चित्रण प्रसिद्ध हुआ और राम के इस रूप को पूजा भी जाने लगा।

दूसरी शती ईसा पूर्व से तीसरी शती ईसा पूर्व के आरम्भिक पाद की कालावधि में ढालकर बनाए गए सिक्कों की उज्जैन की श्रृङ्खला यदि कूट-मुद्रा न हो तो वनचारी राम-सीता एवं लक्ष्मण के अङ्कन प्राप्त हुए हैं।[3]

गुप्तकाल के देवगढ़ मन्दिर के राम-कथा फलकों में राम-सीता एवं लक्ष्मण के वनचारण का दृश्य अङ्कित है।[4]

---

1. *वा.रा.*, 3.11.1
2. वही, 3.10.22
3. देवेन्द्र हाण्डा, 'डेइफिकेशन एण्ड पोट्रेयल ऑफ राम एण्ड हनुमान — फ्रेश आइकॉनिक एण्ड न्यूमिस्मैटिक एविडेंस', *स्थापत्यम्* (भारतीय वास्तु-विज्ञान की पत्रिका), अगस्त, 2016
4. माधव स्वरूप वत्स, *दि गुप्त टेम्पुल एट देवगढ़*, ए.एस.आई. मेम्वायर सं. 70, नई दिल्ली, 1952, फलक सं. 15 बी

तुलसीदास के *विनय-पत्रिका* एवं *हनुमान चालीसा* में वन-चारण वाले राम का सन्दर्भ स्पष्ट है - **बन्दौं राम-लखन-वैदेही। जे तुलसी के परम सनेही।।**[1] एवं **राम-लखन-सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप।।**[2]

आज भी वनचारण करने वाले राम-सीता एवं लक्ष्मण की मूर्ति की पूजा लोक में प्रसिद्ध है। दिल्ली के वास्तु सदन के अध्यक्ष श्री रामेन्द्र पाण्डेय ने बताया कि उनके बिहार के कैमूर जिला के मोहनियाँ स्थित गृह में राम-सीता एवं लक्ष्मण के वनगमन की मूर्ति की पूजा होती रही है।



राम-सीता और लक्ष्मण का वन चारण का एक चित्र

34

राममार्गवेय का वैदिक सन्दर्भ

ऐतरेय ब्राह्मण के विवेचित पञ्चिका 7.27 के सन्दर्भ के अतिरिक्त राम का राजा के रूप में स्पष्ट उलल्लेख *ऋग्वेद* के दसवें मण्डल में आया है-

प्रतद्दुःशीमेपृथवानेवेनेप्रामेवोचमसुरेमघवत्सु।
येयुक्त्वायपञ्चशतास्मयुपथाविश्राव्येषाम् ।।[3]

साथ ही राम के वन-गमन का एक क्षीण उल्लेख *ऋग्वेद* के दसवें ही मण्डल में (**भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्।।**[4]) प्राप्त होना कहा

1. *विनय-पत्रिका*, 35.5
2. हनुमान चालीसा, दोहा 3
3. *ऋग्वेद*, 10.93.14
4. वही, 10.3.3

गया है किन्तु उसका कोई कारण यहाँ उल्लिखित नहीं है। कैकेयी का तो कोई सन्दर्भ ही नहीं है। पूर्वापर क्रम में भी यह मन्त्र उपर्युक्त मन्त्र के पूर्व आता है। नीलकण्ठचतुर्धर (17वीं सदी उत्तरार्द्ध) द्वारा ऋग्वेदिक मन्त्रों के आधार पर रचे गए *मन्त्ररामायण* के दूसरे मन्त्र में राम के वनवास की जो बात प्रतीकात्मक रूप से कही गई है वहाँ भी कैकेयी का कोई सन्दर्भ नहीं है –

स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद।
स सनीकेभिः प्रसह्यमो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः।।[1]

राम–कथा के उपरि–विमर्श में स्पष्ट है कि मर्यादापुरुषोत्तम राम ने भरत के लिए एकछत्र निष्कण्टक राज्य छोड़ने का निश्चय कर स्वेच्छया वन–गमन वरण किया।

ऐतरेय ब्राह्मण के **राममार्गवेय (कः स्वित् सोऽस्माकास्ति वीरो, य इमं सोमपीथमभिज्येष्यति अयं अहमस्मि वो वीर, इति हो वाच रामो मार्गवेयो रामो हास मार्गवेयोऽनूचानः स्यापरणीयस।**[2]**...)** स्वेच्छया वनगमन का वरण करनेवाले यही मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं। वन–मार्गण करते हुए परिस्थितियोंवश रावण–वध तक की घटनाएँ घटीं। जिसका सङ्केत *ऋग्वेद* के उपरि–उल्लिखित मन्त्र में भी है। मूल रामायण काव्य का समापन इसी घटना के साथ माना गया है। *वाल्मीकीय रामायण* को रावणवध काव्य बताया गया है – **रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरश्च वधं निशामयध्वम्**[3] तथा **पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः**[4]। *सीतोपनिषद्* में इन्हें ही **वैखानसराम** कहा गया है जिनके वैखानस रूप को ऋषि–मुनिगण सतत स्मरण करते रहते हैं **(ओङ्कारात् परतो राम वैखानसपर्वतः।।... स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम्।।)**।

1. *मन्त्ररामायण*, 2
2. *ऐतरेय ब्राह्मण*, थियोडॉर आफ्रेश्त सम्पादित, वॉन, 1879, पृ. 206-207, पञ्चिका 7.27
3. *वा.रा.*, 1.2.43
4. वही, 1.4.7



दशावतार मन्दिर, देवगढ़, ललितपुर (उत्तर प्रदेश)
से प्राप्त राम वनगमन का दृश्य
(गुप्तकालीन)

35

राम ने जटा-चीर कब धारण किया

राम के तापस वेश के सन्दर्भ में प्रथम उल्लेख कैकेयी द्वारा दशरथ से वर माँगने (**चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः**[1]) और फिर राम को अपना प्राप्त वर बताने (**जटाचीरधरो भव**[2]) में किया गया है जब कैकेयी के निर्देश पर दशरथ की आज्ञा से सुमन्त्र राम को लेकर दशरथ के पास आए थे। तापस वेश का पुनः सन्दर्भ अयोध्याकाण्ड के 52वें सर्ग में आता है जब कैकेयी राम-लक्ष्मण व सीता के लिए वल्कल-वस्त्र देती है। यदि यह कार्य अयोध्या के राजभवन में हो गया था तो राम के श्रृङ्गवेरपुर में पहुँचने के बाद वत्स देश में प्रवेश के पूर्व 'मुनिरूप' (**ऋषिसमौ**, 2.52.70) धारण करने —

सोहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम्।
... ...
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय।
तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत।।
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रास्तेनाकरोज्जटा।
दीर्घबाहु नरव्याघ्रो जटिलत्वमधारयत्।।
तौ तदा चीरसम्पन्नौ जटामण्डलधारिणौ।
अशोभतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।।[3]

का विवरण क्या अर्थ रखता है! *वाल्मीकीय रामायण* जैसा ही विवरण कालिदास ने भी *रघुवंश* के तेरहवें सर्ग के 59वें श्लोक में दिया है कि राम ने अपना मुकुटमणि उतारकर जटाजूट धारण किया।

पुरं निषादाधिपतेरिदं ... ... मौलिमणिं विहाय।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः ... ...।।[4]

वस्तुतः राम ने चूँकि स्वयं राज्य की आसक्ति का त्याग करके वन जाने का निर्णय लिया था अतः अयोध्या के राजकुमार के रूप में उन्हें राज्य की सीमा

1. वही, 2.1.1.27
2. वही, 2.18.37
3. *वा.रा.*, 2.52.67-70
4. रघुवंश, सर्ग 13, श्लोक 59

तक समादर पूर्वक भेजा गया, दशरथ द्वारा सुमन्त्र को दिए गए निर्देश में यही सङ्केतित है —

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वयामाहि हयोत्तमैः।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदान् परम्।।[1]

राम-लक्ष्मण व सीता के अयोध्या में ही वल्कल-वस्त्र धारण (सर्ग 52) का विवरणांश क्षेपक है और स्पष्ट ही मूल कथा का अङ्ग नहीं है। तापस वेश धारण का स्थान श्रृङ्गवेरपुर है। यहाँ भी केवल राम व लक्ष्मण दो ही तापस वेश में चीरसम्पन्नौ कहे गए हैं, सीता नहीं।

36

कैकेयी का लोक में उचित मान होना चाहिए

सत्य की रक्षा के लिए कैकेयी का आगे आना भी बड़े ही महत्व की बात थी। भास ने कैकेयी के उस चरित्र को विशेषरूप से उल्लिखित किया है (**महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम्। ... पुत्रको मे राजा भवत्विति।**[2])। भास ने राम के अयोध्या वापस आने पर **कैकेयी और राम के परस्पर पाँच बार वार्तालाप** के कथोपकथन के माध्यम से **कैकेयी के मान में कोई कमी नहीं आने दी है।**[3]

कालिदास के राम ने तो स्वयं वार्तालाप का आरम्भ करते हुए कैकेयी के कार्य को '**सुकृत**' की संज्ञा दी है (**सुकृतं तवेति**)-

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब! सत्यान्-नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः।।[4]

वाल्मीकीय रामायण में यद्यपि महर्षि वाल्मीकि ने आरम्भ में देवताओं के श्रीमुख से कैकेयी को '**कीर्ति**' की उपमा दी है -

राज्ञो दशरथस्यत्वयोध्याधिपतेर्वि।
... ...
अस्य भार्यासु त्रिसृषु ह्री श्री कीर्तित्युपमासु च।।[5]

1. *वा.रा.*, 2.39.10
2. *प्रतिमानाटक*, अङ्क 3
3. वही, अङ्क 7
4. *रघुवंश*, 14.16
5. *वा.रा.*, 1.15.19,20

कैकेयी का लोक में उचित मान होना चाहिए

राम वनगमन के बाद चित्रकूट में भरत से उनकी माता को सन्दर्भित करते हुए बात करने में राम ने कैकेयी के लिए '**यशस्विनी**' शब्द का प्रयोग किया है (**तव माता यशस्विनीम्**[1])।

लेकिन कथा के पात्रों के माध्यम से कैकेयी ऐसे सम्मानजनक शब्दों से अभिहित नहीं हो सकी है। किन्तु महर्षि वाल्मीकि द्वारा राम के अयोध्या वापस आने पर राम द्वारा माताओं की पाद-वन्दना के अवसर पर कैकेयी को '**यशस्विनी**' विशेषण से संयुक्त करना अपना अलग ही महत्व रखता है-

जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन।
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।।[2]

गोस्वामी तुलसीदास के *रामचरितमानस* में वनवास घटित होने के बाद चित्रकूट में कैकेयी के प्रति राम का आदर भाव निम्नवत् दर्शाया गया है-

देखीं राम दुखित महतारीं। ...... प्रथम राम भेंटी कैकेयी।[3]
दोस देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहि सेई।।[4]

और

भरत मातु पद बन्दि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी सकुच सोच सब मेंटि।।[5]

किन्तु कैकेयी के प्रति आम धारणा कलुषित ही रही, भरत का वाक्य है- **जननी कुमति जगतु सब साखी**[6] और जनक को रानी की कलुषित चाल की जानकारी हुई — **रानि कुचालि सुनत नरपालहि**[7] एवं अन्य।

---

1. *वा.रा.*, 2.107.5
2. *वा.रा.*, 6.130.49
3. *रामचरितमानस*, अयोध्याकाण्ड, दोहा 243 के बाद चैपाई 6, 7
4. वही, दोहा 265 के बाद चैपाई 8
5. वही, दोहा 319
6. वही, दोहा 261 के बाद चैपाई 1
7. वही, दोहा 270 के बाद चैपाई 3

और राम के वनवास से वापस आने पर न कैकेयी का सङ्कोच मिटा था और न लक्ष्मण का क्षोभ–

रामहिं मिलत कैकई हृदय बहुत सकुचानि।।

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिषपाइ।

कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।।[1]

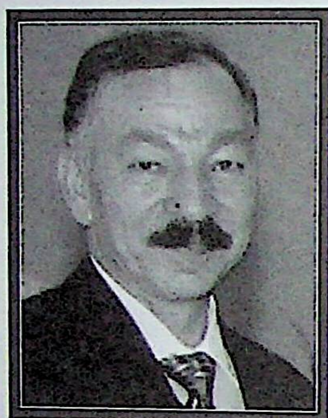
तुलसीदास एवं अनेक परवर्ती रचनाकारों ने *वाल्मीकीय रामायण* के प्रक्षिप्त कथानक को ही आधार बनाया और **कैकेयी को लोक में न्याय नहीं मिला।**

'शब्दार्थ' एवं 'घटनाओं' का सही ढङ्ग से पर्यवेक्षण न कर सकने के कारण गलत प्रस्तुतीकरण के लोकप्रसिद्ध होने से **कैकेयी के चरित्र का बहुत हनन हुआ है।** फलस्वरूप, **कैकेयी के प्रति लोक में अनादर का भाव भर गया। समाज में कैकेयी का नाम व्यङ्ग्यात्मक चोट करने के लिए ही लिया जाता है।** यहाँ तक कि **कोई भी घर-परिवार अपनी कन्या का नामकरण कैकेयी नहीं करता।** अमृता श्याम ने भी अपने काव्य-ग्रन्थ *कैकेयी* में यह बात उठाया है।[2]

हालाँकि राम के परवर्ती युग में ऐसी नकारात्मक भावना नहीं थी। अजमीढ़ की पत्नी का नाम **कैकेयी** था।[3] इसी तरह सार्वभौम की पत्नी सुनन्दा[4] और विराट की पत्नी सुदेष्णा का भी अपर नाम **कैकेयी** था।[5] तुर्किस्तान के प्राचीन बोगाजकोय[6] की आर्यवंशी परम्परा में आर्य देवताओं

---

1. वही, उत्तरकाण्ड, दोहा 6 (क) एवं (ख)
2. *कैकेयी,* कलकत्ता, 1992, प्राक्कथन, पृ. 12
3. *महाभारत,* आदिपर्व, 95.37
4. वही, 95.16
5. वही, विराटपर्व, 9.6, 15.2, 16.51 के बाद कोष्ठकान्तर्गत श्लोक 22, 19.6-7, 24.30 के बाद कोष्ठकान्तर्गत श्लोक 3
6. ह्यूगो, विङ्कलर, 'एक्सकवेशन्स एट बोगाजकुई इन समर ऑफ 1907', *स्मिथसोनियन इंस्टीच्यूशन एनुअल रिपोर्ट फॉर 1908,* वाशिंगटन, 1909; ठाकुर प्रसाद वर्मा, *संस्कृति : शोध-पत्रिका,* अङ्क 6, 2010, पृ. 10-12


सईद ककेयी

(मित्र, वरुण, इन्द्र एवं नासत्य) एवं राजपुरुषों (दशरथ, भरत, शत्रुघ्न आदि 14 शासकों ई.पू. 1500-1270 तक) के नाम पुरातात्विक प्रमाणों में प्राप्त हैं और तुर्किस्तान, ईरान, इराक तथा सीरिया में रहने वाले कुर्द लोगों में अभी भी 'ककेई' ('कैकेयी' का अपभ्रंश) नाम अथवा उपनाम के रूप में (उदाहरण के लिए 'सईद ककेयी' कुर्दिस्तान की माँग करने वाले) प्राप्त है।

यह नाम इस कारण प्रचलन में जान पड़ता है कि द्वापर युग की भाँति मध्य एशिया की परम्परा में भी यह नाम सम्मान सूचक रहा क्योंकि **कैकेयी असम्मानित नहीं थी**। स्पष्ट ही **कैकेयी के प्रति प्राचीन परम्परा में आज जैसी भावना नहीं थी**। किन्तु वर्तमान भारतीय समाज में *वाल्मीकीय रामायण* के मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग के प्रक्षेपित अंशों के आधार पर कैकेयी की निन्दित लोक-प्रसिद्धि के कारण यह नाम अग्राह्य हो गया है। परन्तु आज के युग में भी **कहीं न कहीं कैकेयी के प्रति लोक-चेतना में सम्मान** है, तभी तो जैसा कि हमारे अति-अभिन्न बालाजी कालोनी, लङ्का, वाराणसी के निवासी श्री केदार तिवारी जी (सेवा-निवृत्त प्रबन्धक, काशी गोमती ग्रमीण बैंक, वाराणसी) की धर्मपत्नी श्रीमती इन्दु तिवारी के माध्यम से मुझे ज्ञात हो सका है कि ग्राम भरौली आला, पोस्ट ताजपुर डेहमा, जिला गाजीपुर, उत्तर प्रदेश के निवासी श्री वासुदेव सिंह एवं श्रीमती मुनेसरी देवी ने एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए अपनी सुपुत्री का नाम **'कैकेयी'** रखा है


श्री केदार तिवारी

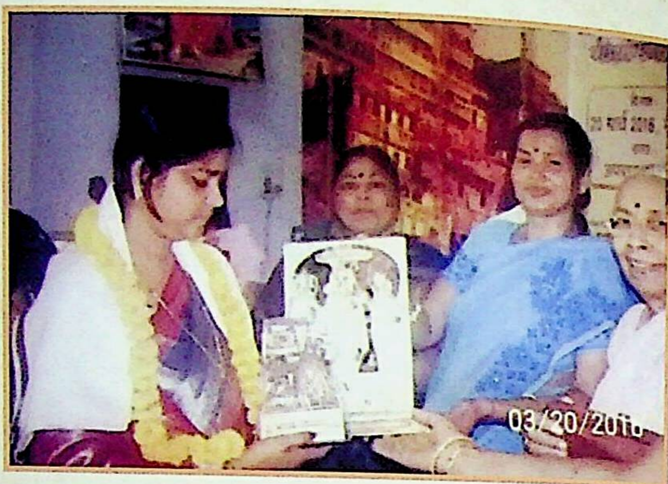

श्रीमती इन्दु तिवारी

कैकेयी देवी पुत्री स्व. वासुदेव सिंह एवं मुनेसरी देवी,
ग्राम भरौली आला, ताजपुर डेहमा, जिला गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)
का वीरांगना वाहिनी, हिन्दू जागरण मंच, काशी
द्वारा विदुषी महिला सम्मेलन में सम्मान
(20 मार्च 2016)



श्रीमती कैकेयी देवी

का सार्वजनिक सम्मान



श्रीमती कैकेयी देवी को श्रीराम की मूर्ति एवं काशीविश्वनाथ मंदिर की प्रतिछवि भेंट कर सम्मानित करतीं (दाएं से बाएं) श्रीमती प्रमिला दूबे, माधवी तिवारी एवं इन्दु तिवारी



श्री केदार तिवारी एवं प्रोफेसर दीनबन्धु पाण्डेय के साथ श्रीमती कैकेयी देवी एवं उनके पति श्री आलोक सिंह



वीराङ्गना वाहिनी, हिन्दू जागरण मंच, काशी के सदस्यों के बीच श्रीमती कैकेयी देवी



स्व. वासुदेव सिंह
कैकेयी के पिता



श्रीमती मुनेसरी देवी
कैकेयी की माता



श्रीमती कैकेयी देवी



श्री आलोक सिंह
(कैकेयी के पति)

जो ग्राम एवं पोस्ट तारीघाट, जिला गाजीपुर के निवासी श्री आलोक सिंह (काशी गोमती ग्रामीण बैंक, वाराणसी) की धर्मपत्नी हैं। श्री वासुदेव सिंह के द्वारा अपनी सुपुत्री का **'कैकेयी'** नामकरण करने के कदम से न केवल **'दशरथ-पत्नी कैकेयी'** को वह मान प्राप्त हो सका है जिसकी वह प्रकृत्या अधिकारिणी है बल्कि **उस गलत धारणा का सुधार हुआ है जिसे लोक को भ्रम में डालने के लिए फैलाया गया था।**

आधुनिक विद्वानों ने भी वास्तविकता के शोध की जहमत नहीं उठायी। नामी-गिरामी विद्वान् पं. वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री को मैं उद्धृत करना चाहूँगा जिन्होंने अपने एक भाषण में कहा है कि 'कैकेयी का नाम एक अनर्थ सूचक मुहावरा बन गया है, प्रायः अब यह एक ऐसी स्त्री के लिए प्रयोग किया जाता है जो अनैतिक ढङ्ग से अपना प्रभाव बढ़ाकर उसका प्रयोग अनुचित उद्देश्य के लिए करती है' और इस कथन के साथ *वाल्मीकीय रामायण* के उन सभी श्लोकों को चुन-चुनकर प्रस्तुत किया है

जहाँ कैकेयी को दुष्ट–भाव की वाहिका कहा गया है।[1] कैकेयी को उस कार्य का कलङ्क दिया गया जो कार्य उसने किया ही नहीं। पौराणिक परम्पराओं ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तमत्व के उत्थान में कैकेयी के चरित्र को नकारात्मक दृष्टिकोण दिया।

कई अन्य आधुनिक अध्येताओं एवं रचनाकारों ने भी कैकेयी पर अपनी लेखनी चलाई है और अपनी दृष्टि से कैकेयी के चरित्र का आकलन किया है। *कल्याण* के दो अङ्कों 'नारी अङ्क' तथा 'रामभक्ति अङ्क' (क्रमश: 1948 एवं 1994) में 'माता कैकेयी' तथा 'भक्तहृदया माता कैकेयी' शीर्षक लेख देखने को मिले हैं। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने *साकेत* महाकाव्य[2] में कैकेयी के पश्चाताप का मार्मिक प्रस्तुतीकरण किया है और शिव वचन चौबे ने *कैकेयी की रामभक्ति* खण्डकाव्य[3] लिखा। अमृता श्याम ने अपना काव्य–ग्रन्थ *कैकेयी*[4] इतिहास पर आधारित नहीं बल्कि नई भावनाओं तथा कल्पनाओं के साथ[5] अंग्रेजी में लिखा है।

अमृता श्याम के कैकेयी ग्रन्थ के अंश

Why does no one name their daughters Kaikeyi? Is it a name

पृष्ठ 12

But so interesting. Not totally black nor fully white but a character in shades of grey. So human. Not perfect. A warm-hearted, complex woman.

Kaikeyi is a work of imagination. It is not based on historical facts nor completely on the *Ramayana*. It is

पृष्ठ 7

the *Ramayana*. The same sort of dramatic dialogue. A "companion piece" for *Kurukshetra*. I never consciously thought that it would be *Kaikeyi*. But then, one night in the newsroom during nightshift, there was a lull in work and I was bored. The Prologue to Kaikeyi wrote

पृष्ठ 6

---

1. *लेक्चर्स ऑन दि रामायण*, मद्रास संस्कृत एकेडेमी, 1949, हिन्दी अनुवाद *रामायण के ज्योति स्तम्भ*, सुशीला भटनागर, अध्याय 28, कैकेयी, पृ. 455-483
2. चिरगाँव, झाँसी, 1929
3. कलकत्ता, 1988
4. कलकत्ता, 1992
5. वही, प्राक्कथन, पृ. 7

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।"
चौंके सब सुन कर अटल कैकई स्वर को।
बैठी थी अचल तदापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही अब थी हहा गोमुखी गंगा-

"हां जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूं तात, तुम्हारी मैया।"

यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊं,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र मैं खोऊं!
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूं सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।

करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊं?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊं?"
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी,
सबमें भय विस्मय और खेद भरती थी।

"क्या कर सकती थी मरी मंथरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजर-गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।

थूके, मुझपर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके?
छीने न मातृपद किंतु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूं और क्या तुझसे?

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी-
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा-
'धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'-"

"सह सकती हूं चिरनरक, सुनें सुविचारी,
पर मुझे स्वर्ग की दया दण्ड से भारी।
लेकर अपना यह कुलिश कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिये तुम्हें वन भेजा।



मैथिलीशरण गुप्त



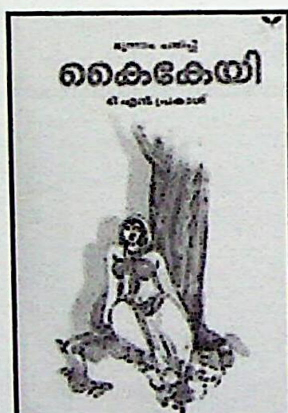


स्नेह ठाकुर



हरिकृष्ण परेशान ने *यशस्विनी कैकेयी* चम्पू महाकाव्य प्रकाशित किया है।[1] कैकेयी को केन्द्र में रख कर दो उपन्यास आए हैं, टी.एन. प्रकाश का *कैकेयी* (2009) मलयालम में और स्नेह ठाकुर का *कैकेयी : चेतना-शिखा*[2] हिन्दी में। स्नेह ठाकुर ने अपने उपन्यास में कुछ तथ्यों का आधार लेकर मातृत्व-भाव को अपनी साहित्यिक कल्पनाओं के साथ वर्णित कर राम के ईश्वरत्व को स्थापित करते हुए कैकेयी को निर्दोषित करने का प्रयास किया है।[3] राजेन्द्र अरुण ने *अथ कैकेयी कथा*[4] नाम से पुस्तक लिखी है। स्नेह ठाकुर ने कैकेयी पर उपन्यास के अतिरिक्त अपने चिन्तन को *रामचरितमानस* एवं *वाल्मीकीय रामायण* के सन्दर्भ से क्रमशः *चिन्तन के धागों में कैकेयी*[5] और *कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम*[6] नामक दो अन्य रचनाएँ भी दी हैं एवं हेमबिहारी वैरागी ने मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग पर *मानस मन्थरा*[7] नामक





टी.एन. प्रकाश का मलयालम उपन्यास
'कैकेयी'

1. वाराणसी, 2010
2. नई दिल्ली, 2012
3. वही, प्राक्कथन, पृ. 28
4. नई दिल्ली, 2013
5. नई दिल्ली, 2013
6. नई दिल्ली, 2013 प्रकाश्य
7. राजसमन्द, 1995

महाकाव्य रचा है। विद्वान् कथावाचकों ने भी समय-समय पर कैकेयी को स्मरण किया है। इस सन्दर्भ में चैतन्य चरण दास का 12 अप्रैल 2013 का अंग्रेजी प्रवचन सन्दर्भ्य है जहाँ उन्होंने 'अन्धविश्वास और आधारहीन शङ्का में घिरी - कैकेयी' विषय पर विवेचना की है। इन सभी उल्लेखों में महाराज श्री रामकिंकर जी के बम्बई में किए गए प्रवचनों का एक अंश रामायण ट्रस्ट द्वारा 2006 में प्रकाशित *महारानी कैकेयी : वन्दनीया अथवा निन्दनीया* विशेष ध्यान आकर्षित करता है जहाँ कैकेयी को लोक-प्रसंशा प्रदान की गई है। किन्तु इन सभी विवेचनाओं का मूल आधार *वाल्मीकीय रामायण* का वर्तमान में प्राप्त प्रक्षिप्तांश युक्त विवरण ही है जो कैकेयी के लोक-प्रसिद्ध कथित कुटिल चरित को नवीनता के साथ आवरण-प्रदान जैसा है।

वस्तुतः *वाल्मीकीय रामायण* के मूल विवरण, जिसका शोधपरक विवेचनात्मक प्रस्तुतीकरण ऊपर के पन्नों में विस्तार से किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए **कैकेयी को लोक में उसका वास्तविक उचित स्थान मिलना चाहिए।**

कैकेयी ने अपने विवाह के अवसर की शर्त के उल्लङ्घन के विरुद्ध आवाज उठाई थी। ऊपर के विवेचनों से यह भी स्पष्ट है कि कैकेयी ने राम को वनगमन का वर माँगा ही नहीं था, उसने तो अपने विवाह की शर्त के अनुसार मात्र भरत के राज्याभिषेक एवं पति को सत्यभ्रष्ट न होने देने के लिए अपनी दृढ़ता का परिचय दिया था। उस नारी के इस उत्कट दृढ़ व्यवहार का लोक में उचित मान होना चाहिए। वनगमन मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अपना निर्णय था, भाई के अकण्टक राज्य एवं पिता के सत्य के रक्षणार्थ।



जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन।
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।।

वा.रा., **6.130.49**

सन्दर्भ ग्रन्थानुक्रमणी

मूल संस्कृत, पालि एवं अपभ्रंश ग्रन्थ

अध्यात्मरामायण, एन. सिद्धान्तरत्न सम्पादित, कलकत्ता संस्कृत सीरीज संख्या 11,कलकत्ता, 1935

आनन्द रामायण, सम्पा. रामतेज पाण्डे, वाराणसी, 2013

आश्वलायन श्रौतसूत्र, सम्पा. मण्डन मिश्र, नई दिल्ली, 1984-85

ऋग्वेद, सुबोध भाष्य, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, दिल्ली, 1970

ऐतरेय ब्राह्मण, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991

चीन रामायण, सरस्वती विहार ग्रन्थ माला 8, 1938, 'अनामकं जातक' (***चीनी तिपिटक***, तैशो संस्करण, सं. 152,) फ्रेंच अनुवाद, ***बुलेटिन एकाल फ्रासेस एक्स्ट्रेम ओरियन***, भाग 4, 1904, पृ. 698-701; 'दशरथ कथानम्', (***चीनी तिपिटक***, ताइशो संस्करण, सं. 203) हिन्दी अनुवाद, ***नागरी प्रचारिणी पत्रिका***, वर्ष 54, ***चीन रामायण***, सरस्वती विहार ग्रन्थ माला 8, 1938, 'अनामकं जातक' (***चीनी तिपिटक***, ताइशो संस्करण, सं. 152,) फ्रेंच अनुवाद, ***बुलेटिन एकाल फ्रासेस एक्स्ट्रेम ओरियन***, भाग 4, 1904, पृ. 698-701; 'दशरथ कथानम्', (***चीनी त्रिपिटक***, ताइशो संस्करण, सं. 203) हिन्दी अनुवाद, ***नागरी प्रचारिणी पत्रिका***, वर्ष 54, पृ. 286-289

जातक, हिन्दी अनुवाद, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भाग 4, 1982

'दसरथ जातक' सं. 461, ***दि जातक***, वी. फॉसबॉल सम्पादित, भाग 1-7, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लन्दन, 1877-1897

'दसरथ जातक' सं. 461, अंग्रेजी अनुवाद, डब्ल्यू.एच.डी. राउज, ***दि जातक***, भाग 4, 1901, पृ. 78-82

दि दसरथ जातक, टेक्स्ट एण्ड अ्रांस्लेशन, वी. फॉसबाफल, कोपेनहेगन, 1871

भागवत पुराण, गीता प्रेस संस्करण, संवत् 2059

पद्म पुराण, उत्तरकाण्ड, बङ्गीय पाठ, ***जर्नल ऑफ एशिया टिक सोसाइटी***, 1842, पृ. 1122 ई.सी. रावेनशॉ, 'दि अवतारज ऑफ विष्णु, एन एब्सट्रक्ट ट्रान्सलेशन फ्राम ***पद्म पुराण***', पृ. 1112-1130

पूर्वकालामृत, कालिदासकृत, हिन्दी अनुवाद - सुरेश चन्द्र मिश्र, रंजन प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रतिमानाटक, भास, सम्पा. कुमुद रंजन डे, कलकत्ता, 1942

ब्रह्म पुराण, खेमराज श्रीकृष्णदास संस्करण, पुनर्प्रकाशित दिल्ली, 1985

भावार्थ रामायण, एकनाथकृत, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ, 2009

मन्त्ररामायण, नीलकण्ठचतुर्धरकृत, (सम्पादक–अनुवादक) प्रभुनाथ द्विवेदी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1998

महाभारत, गीता प्रेस संस्करण, संवत् 2059

महाविभाषा, कात्यायनीपुत्र के ग्रन्थ ***ज्ञानप्रस्थान*** पर लिखी गई टीका, चीनी भाषा में प्राप्त (ताइशो 15422)

याज्ञवल्क्यस्मृति, सम्पा. शिवराम शर्मा, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1975

रघुवंश, कालिदास, श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी सम्पादित, चैखम्भा सुर भारती, वाराणसी, 2015

वसिष्ठसंहिता, सम्पा. गिरिजा शंकर शास्त्री, वाराणसी, संवत् 2065

वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस संस्करण, संवत् 2070

वाल्मीकीय रामायण की *तत्त्वदीपिका* व्याख्या, माहेश्वरतीर्थ कृत, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1991

वाल्मीकीय रामायण की *शिरोमणि* टीका, शिवसहाय कृत, पी. एम. नायक एवं पी. गीर्वाणी, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, 2010

वाल्मीकीय रामायण का क्रिटिकल एडिशन, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा, 1960-75

वाल्मीकीय रामायण, अनुवादक - चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक – रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1927

वसुदेवहिण्डी, संघदासगणी , सम्पा. जगदीश चन्द्र जैन, बडोदा, 1977

विश्वकर्मप्रकाश, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, वि.सं. 2059

विष्णु पुराण, गीता प्रेस संस्करण, 2013

शुक्रनीतिसार, व्याख्याकार स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती,बहालगढ़, वि.सं. 2053

सत्योपाख्यान, *नोटिसेज ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स*, राजेन्द्रलाल मित्र, भाग 2, खण्ड 1, कलकत्ता, 1872, पाण्डुलिपि संख्या 714, पृ. 129-131, अध्याय 50-79 तक की विषय-सूची (सूत-शौनक संवाद के रूप में), वनवास सम्बन्धी विवरण नहीं प्राप्त।

सत्योपाख्यान, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई (बुल्के पृ. 182 पर उल्लिखित, वाल्मीकि-मार्कण्डेय संवाद के रूप में)

सत्योपाख्यान, बालस्वामी जी, चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र', ***कैकेयी***, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969, पृ. 7 पर उल्लिखित

मूल हिन्दी बँगला तेलुगु ग्रन्थ

कम्ब रामायण, तमिल से अनूदित, अनुवादक – न. वि. राजगोपालन, पटना, 1963

कृत्तिबासी रामायण, कृत्तिबास ओझा कृत, मोहनपाल धनंजय घोषल, प्रज्ञाविकास, 2014

कृत्तिबासी रामायण, बसुमति साहित्य मन्दिर, कलकत्ता, 1926

साकेत (महाकाव्य), मैथिली शरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी, 1929

रामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस संस्करण, वि.सं. 2016

विनय-पत्रिका, तुलसीदास, सम्पादक एवं व्याख्याकार देव नारायण द्विवेदी, बनारस, 1938

हनुमान चालीसा, गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण

कैकेयी साहित्य

अमृता श्याम, ***कैकेयी*** (काव्य-ग्रन्थ), कलकत्ता, 1992

केदारनाथ मिश्र, ***कैकेयी***, 1950, बुल्के द्वारा सन्दर्भित, ***रामकथा – उत्पत्ति और विकास***, पृ. 253

चाँदमल अग्रवाल, 'चन्द्र', ***कैकेयी***, (काव्य-ग्रन्थ), दिल्ली, 1969

प्रकाश टी.एन., ***कैकेयी*** (मलयालम), 2009

राजेन्द्र अरुण, ***अथ कैकेयी कथा,*** नई दिल्ली, 2013

रामकिंकरजी, ***महारानी कैकेयी : वन्दनीया अथवा निन्दनीया,*** रामायण ट्रस्ट, बम्बई, 2006

शिव बचन चौबे सांकृत्यायन, ***कैकेयी की राम भक्ति,*** कलकत्ता, 1998

स्नेह ठाकुर, ***कैकेयी : चेतना-शिखा,*** नई दिल्ली, 2012

कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम, नई दिल्ली, 2013

चिन्तन के धागों में कैकेयी, नई दिल्ली, 2013 (प्रकाश्य)

हरिकृष्ण परेशान, ***यशस्विनी कैकेयी,*** चम्पू महाकाव्य, वाराणसी, 2010

हेमबिहारी वैरागी, ***मानस मन्थरा,*** प्रकाशक : नन्दलाल गुर्जर, कँकरोली राजसमन्द (राजस्थान), 1995

कैकेयी पर अध्ययन

कल्याण, 1948, नारी अङ्क, 'माता कैकेयी', पृ. 422-425

कल्याण, 1994, रामभक्ति अङ्क, 'भक्तहृदया माता कैकेयी' एवं 'ब्रह्म पुराण की रामकथा', पृ. 233-234

कृपाशंकर तिवारी, 'मन्थरा ने कैकेयी को क्यों उकसाया था?', *आज* (दैनिक, वाराणसी) 7 अक्टूबर, 1962, पृ. 6

ई. आई. काल, ***इण्डिया-फोरम्सडॉट कॉम*** पर 5.7.2009 http://www.indiaforums.com/forum_posts.asp?TID=1208559 Edited by Kal El - 05 July 2009 at 1:16pm

चित्राव, सिद्धेश्वर शास्त्री, ***प्राचीन भारतीय चरित्रकोश,*** पूना, 1964, पृ. 67

चैतन्य चरण दास, 12 अप्रैल 2013 का अंग्रेजी प्रवचन (नेट पर उपलब्ध), 'अन्धविश्वास और आधारहीन शंका में घिरी –कैकेयी'

दीपक चन्द्र, ***जननी कैकेयी***, 1983 की जानकारी प्रदीप भट्टाचार्य ने कैकेयी पर लिखे अपने लेख 'कैकेयी दैट हॉरिबुल वुमन अण्डरस्टुड एट लास्ट' में ***बोलोजी डॉट कॉम*** पर 24.04.201......

बुल्के, फादर कामिल, 'राम का निर्वासन' व 'कैकेयी की वरप्राप्ति' ***रामकथा : उत्पत्ति और विकास***, प्रयाग, 1999 (प्रथम प्रकाशन), 1950, संशोधित संस्करण, 1960

भट्टाचार्य, प्रदीप, कैकेयी पर लेख, 'कैकेयी दैट हॉरिबुल वुमन अण्डरस्टुड एट लास्ट', ***बोलोजी डॉट कॉम***

मणि, वेट्टम, 'कैकेयी', ***पुराणिक एन्साइक्लोपीडया***, दिल्ली, 1957, पृ. 364, 204

श्रीनिवास शास्त्री, वी. एस., ***लेक्चर्स ऑन दि रामायण***, मद्रास संस्कृत एकेडेमी, 1949, हिन्दी अनुवाद ***रामायण के ज्योतिस्तम्भ***, वाल्मीकिकृत 'रामायण' के पात्रों पर टीका, अनुवादिका सुशीला भटनागर, अध्याय 18, 'कैकेयी', पृ. 455-483

सत्य चैतन्य, बोलोजी डॉट कॉम, '***कैकेयी : राम के मांगीला बनवास***'

होलाजी, श्रीकृष्णा, 'रामायण की कैकेयी', ***विश्व ज्योति***, रामायण अङ्क परिशिष्ट, जून–जुलाई 1971, पृ. 188-190

अन्य अध्ययन

जैकोबी, हरमन जी., 'ऑन दि एण्टिक्विटी ऑफ वेदिक कल्चर', ***जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाकि सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन***

एण्ड आयरलैण्ड, (न्यू सीरीज) भाग 41, अंक 3, जुलाई 1909, पृ. 721-726

पाण्डेय, राजबली, ***अशोक के अभिलेख,*** वाराणसी, वि.सं. 2022

फ्लीट, जे. एफ., ***कार्पस इंस्क्रप्शनम इण्डिकेरम,*** भाग 3, कलकत्ता, 1888

बागची, पी.सी. प्रस्तावना, ***अध्यात्मरामायण,*** एन. सिद्धान्तरत्न सम्पादित, कलकत्ता संस्कृत सीरीज संख्या 11, कलकत्ता, 1935

बुल्के, फादर कामिल, ***रामकथा : उत्पत्ति और विकास,*** प्रयाग, 1999 (प्रथम प्रकाशन, 1950)

वत्स, माधव स्वरूप, ***दि गुप्त टेम्पुल एट देवगढ़,*** ए.एस.आई. मेम्वायर सं. 70, नई दिल्ली, 1952

वर्मा, ठाकुर प्रसाद, ***श्रीराम और उनका युग,*** पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक आकलन, वाराणसी, 1993

अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, ***गुप्तकालीन मुद्राएँ,*** पटना, 1954 ***दि क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर,*** वाराणसी, 1957 'वसुखनि के आर्यवंशीय मितन्नी राजवंश का इतिहास', ***संस्कृति : शोध पत्रिका,*** अंक 6, 2010, पृ. 9-13

सहाय, सच्चिदानन्द, ***दि राम जातक इन लाओस, ए स्टडी इन जीम फ्रा लक फ्रा लम,*** दिल्ली, 1996

सिन्हा, विपिन किशोर, ***राम ने सीता-परित्याग कभी किया ही नहीं,*** वाराणसी, वि.सं. 2068

हाण्डा, देवेन्द्र, 'डेइफिकेशन एण्ड पोट्रेयल ऑफ राम एण्ड हनुमान — फ्रेश आइकॉनिक एण्ड न्यूमिस्मैटिक एविडेंस', ***स्थापत्यम्*** (भारतीय वास्तु–विज्ञान की पत्रिका), अगस्त, 2016, पृ. 51-66

ह्यूगो, विङ्कलर, 'एक्सकवेशन्स एट बोगाजकुई इन समर ऑफ 1907, ***स्मिथसोनियन इंस्टीच्यूशन एनुअल रिपोर्ट फॉर 1908***, वाशिंगटन, 1909

कोश ग्रन्थ

पुराणिक एन्साइक्लोपीडया, वेट्टम मणि, दिल्ली, 1975

बृहद् हिन्दी कोश, सम्पादक - कालिका प्रसाद एवं अन्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1992

संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी, मोनियर मोनियर विलियम्स, आक्सफोर्ड, 1899

प्राचीन भारतीय चरित्रकोश, सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, पूना, 1964



शब्दानुक्रमणिका



प्रो. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा सम्मानित प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय

भारतीय और भारतीयेतर परम्परा ने कैकेयी को खलनायिका मान उसके प्रति घृणा का भाव ही अपनाये रखा। किसी नवजात कन्या का नाम कैकेयी उसे स्वीकार्य नहीं रहा।

कैकेयी का उतना अपराध नहीं था जितना कि माना जा रहा है यह *रामायण* के प्रमाणों से ही सिद्ध है। और इन प्रमाणों को उपस्थित किया है *रामायण* का गहन अध्ययन कर भारतीय विद्या के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने।

प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने राज्यशुल्क की घटना को अपनी मान्यता की आधारशिला बना अपनी कृति में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यदि इस आधार पर कैकेयी ने अपने पुत्र के लिये राज माँगा तो अनुचित नहीं किया।

शुल्क विवाह कैकेयी के प्रसङ्ग में ही हुआ हो यह बात नहीं थी प्राचीन संस्कृत वाङ्मय एवं पुरातत्व से अनेक उदाहरण प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः भरत राज्य के उत्तराधिकारी थे इसके सङ्केत भी उन्होंने रामायणोत्तरवर्ती वाङ्मय से प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार जब *रामायण* का प्रति-संस्करण हुआ तो वरों का प्रसङ्ग ... तथा उनके वनगमन का प्रसङ्ग जोड़ दिया गया और सारा दोष कैकेयी पर मढ़ दिया गया ... ... ।

जिस शर्त के आधार पर कैकेयी के विवाह का निश्चय हुआ था उसका शब्दतः उल्लेख केवल एक ही बार और वह भी ... श्रीराम के द्वारा हुआ है। सशर्त विवाह की बात को इतना पीछे कर वरों की बात को इतना तूल क्यों दिया गया जिस एक बात को सामने लाने से श्रीराम का राज्याभिषेक रुक सकता था उसके लिये वरों को आगे लाने की क्यों आवश्यकता समझी गई! प्रो. दीनबन्धु पाण्डेय ने इसी की ओर अपनी वैदुष्यपूर्ण कृति में ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने कैकेयी को उपेक्षा के गर्त से निकाल उसे सही स्थान पर प्रतिष्ठित किया है और उसी के आधर पर कैकेयी को निन्दा, घृणा और अपवाद के जाल से मुक्त करने का साहसिक प्रयास किया है जिसके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं।

– प्रो. सत्यव्रत शास्त्री

कुछ सञ्चयित उद्‌गार

- भगवान राम के वनवास का कारण, एक नवीन खोज!
  – दामोदर प्रधान, कनाडा
- रामकथा के एक अनालोचित पक्ष के प्रकाशन हेतु बधाई।
  – मोहन चन्द तिवारी, नई दिल्ली
- कोटिशः बधाइयाँ। चिर यशस्विता की हनुमत् प्रार्थना।
  – ईश्वर शरण विश्वकर्मा, गोरखपुर
- विद्वतजनों के परोपकार के लिए आपका कोटि धन्यवाद।
  – शर्मा सुधाकर, नई दिल्ली
- विषय बहुत ही संवेदनशील ... ... नई जानकारी ... ... मिलेगी।
  – शशि कान्त पाठक, नई दिल्ली
- श्रेष्ठता लिए होगा यह कार्य। विश्वास है।
  – श्रीकृष्ण जुगनू, उदयपुर
- मुख पृष्ठ अच्छा बना है। *– उदय प्रताप शाही*, वाराणसी
- प्रकाशन का अधीरता से इन्तजार था।
  – पूनम मिश्रा, लखनऊ
- पुस्तक प्रकाशन की बधाई *– अशोक सिंह*, नागपुर
- Precious book ... of New light ...
  – VIVEK SHUKLA, ALLAHABAD

प्रकाशन संस्थान

वास्तु सदन

(रिसर्च सेण्टर ... वास्तुशास्त्र एण्ड एलाइड साइन्सेज)

103, फर्स्ट फ्लोर, वर्द्धमान ए.सी.

फोन नं.: +91